काव्योपवन

अर्थात्

नानारसमयी कवितावली

निज़ामाबाद निवासी

पण्डित अयोध्या सिंह उपाध्याय

(हरिऔध) प्रणीत.

पटना—"खड्गविलास" प्रेस—बांकीपुर.

चंडीप्रसाद सिंह ने छाप कर प्रकाशित किया.

१९०६

प्रथम बार १०००] ...) आना.

भूमिका।

आज एक नवीन उपहार लेकर आप लोगों की सेवा में उपस्थित होता हूं। उपहार और कुछ नहीं—मम अर्पित और उपहारों की भांति यह भी एक पुस्तक है—नाम है काव्योपवन। आप लोगों ने एक से एक सुन्दर उपवनों को अवलोकन किया होगा, उपवन की नाना लता बेलियों और मनोहर फल फूलों को देखा होगा, वहां अनेक कलकंठ पक्षियों का कल नाद सुना होगा, हरे भरे वृक्षों का अपूर्व सौन्दर्य्य दृग्गोचर किया होगा। आज इस उपवन में भी पदार्पण कीजिये—देखिये दृष्ट उपवनों के से कुछ उपस्कर इस में हैं या नहीं? संभव है कि इस की लतिकायें उतनी ललित न हों, इस के पुष्पचय उतने मनोमुग्धकर और अनूठे न हों, इस के पक्षियों में उतनी कलकंठता और मृदु भाषिता न हो, और इस के तरुपल्लव भी जैसी चाहिये वैसी नयन विमोहन शक्ति न रखते हों, परन्तु फिर भी तो यह उपवन है—आप लोगों को मनोविनोद की सामग्री कुछ न कुछ अवश्य मिलेगी। मैं प्रकृति की सी विलक्षण तूलिका कहां पाऊंगा, उस के समान विचित्र चित्र चित्रण क्षमता कहां से लाऊंगा, और जब यह बातें मेरे बश की नहीं, तो मैं किस मुंह से प्रकृति कर सज्जित उपवन की स्पर्द्धा कर सकता हूं। हां! मनुष्य स्वभाव सुलभ आकांक्षायें अवश्य हैं, पर यह आकांक्षा इतनीही है, कि आप लोग रस लुब्ध भ्रमरों समान उत्तमोत्तम उपवनों में विचरण करते हुये कभी कभी कृपया इस उपवन में भी सुशोभित हूजियेगा—बिशेष प्रार्थना धृष्टता मात्र है।

यह नैसर्गिक नियम है कि फूलों में कांटा होता है, बेला और चमेली के साथ क्यारियों में गेंदा और गुलमेहदी भी होती है। वृक्षों की अपूर्व हरीतिमा जिस पल्लव राशि की सरस सामग्री है, उन्हीं पल्लवों में नीरस सूखे, और कदाकार पल्लव भी होते हैं। यह निश्चित स्वाभाविकता है कि सर्वांश में कोई वस्तु कदापि निर्दोष नहीं होती। फिर एक अल्पक और अपूर्ण बुद्धि द्वारा प्रस्तुत उपवन के निर्दोषिता

की चर्चाही क्या ! यदि है तो इतनी प्रार्थना है कि आपलोग " मधुकर सरिस संत गुण ग्राही " का उदाहरण बन कर सर्वदा इस के गुणों को ग्रहण कीजियेगा, दोषों पर दृष्टि न दीजियेगा, अन्यथा निरर्थक हृदय में निरानन्द का संचार होगा, जो उपहार प्रस्तुतकारी का इष्ट नहीं है। किन्तु मेरे इस निवेदन का यह अभिप्राय कदापि नहीं है, कि आप लोग उचित शिक्षा प्रदान किम्वा निष्पक्ष दोष गुण विवेचन से भी विरत रहें। क्योंकि किसी सुन्दर पुष्प किम्बा किसी मनोहर उद्यान सौन्दर्य्य को देखकर विमुग्ध हो जाने वालों की कमी नहीं है— आवश्यकता ऐसे मनीषियों की है, जो कि यह निर्धारण करें और बतलावें कि किसी उद्यान में सौंदर्य्य कैसे सम्पादन किया जा सकता है—उस को मनोहर वनाने की सामग्री क्या है और वह कौन सी युक्ति है कि जिस से नयनाभिराम सरस कुसुम समूह उत्पन्न किये जा सकते हैं ॥

किसी उपवन में जाइये तो एक ओर जहां प्रफुल्ल कुसुम समूह और हरित पल्लवराजि हृदय को सुप्रसन्न और विमुग्ध करती हैं—तो दूसरी ओर पृथ्वी पर पड़ी हुई फूलों की पंखड़ियां और सूखे एवम् नीरस पत्र समूह भावुक जन के हृदय में संसार की अनित्यता का चित्र अंकित कर के उस को खिन्न करने में नहीं चूकते। एक स्थान पर यदि अपनी कलित का कली से कोकिल चित्त को समुत्फुल्ल कर देता है, तो दूसरी ठौर पपीहे की पी कहां की ध्वनि प्राण को व्यथित वनाये बिना नहीं रहती। ठीक यही अवस्था आप इस उपवन की भी पावेंगे। यह उपवन भी कभी आप को मुग्ध करेगा, कभी खिन्न बनावेगा। कभी आनन्द का श्रोत हृदय में प्रवाहित करेगा, कभी विषाद की बिकट मूर्त्ति सामने लाकर खड़ी कर देगा। इस में पदार्पण कर के कभी आप हंसेंगे, कभी रोवेंगे—कभी उत्तेजना से अधीर बनेंगे, और कभी शान्ति की सुस्निग्ध छाया में सुशीतल होंगे। परन्तु मेरा यह अनुमान मात्र है, इस की चरितार्थता कहां तक होगी, यह मैं नहीं कह सकता।

दश वर्ष के भीतर इस प्रान्त के लोगों की रुचि में विचित्र परिवर्त्तन हुआ है। इस समय ब्रजभाषा का पूर्ववत् अखण्ड दोर्दण्ड प्रताप नहीं

है, आज कविता क्षेत्र में अपनी एक छत्र राज सत्ता प्रवर्तित करने में वह अक्षम है। दिन दिन वह स्थान च्युत हो रही है—और शनैः शनैः उस का स्थान—खड़ी बोली ग्रहण करती जाती है। सामयिक पत्रों में ब्रजभाषा के उच्छेद साधन के लेख आज भी लिखे जा रहे हैं—परन्तु उस का प्रतिवाद करनेवाले कहां हैं। एक दिन वह था जब प्रातःस्मरणीय स्वर्गीय पं० प्रताप नारायण मिश्र ने ब्रजभाषा के पक्ष पर खड़े होकर अपने प्रौढ़ लेखों से दैनिक हिन्दोस्थान पत्र और सहृदय पं० श्रीधर पाठक को हिला डाला था, परन्तु यह सब बातें अब कथानक में परिणत हो गईं, क्योंकि समय का प्रवाह ब्रजभाषा के अनुकूल नहीं है। जहां तक देखा जाता है रुचि, विषय और भाव में भी विभिन्नता रखती है, चार पांच सौ वर्ष से जो शृंगार रस अक्षुण्ण प्रवाहित था, आज उस के अनर्गल प्रवाह स्रोत में भी विघ्न उपस्थित हुआ है। लोगों का आग्रह अब प्राकृतिक दृश्यों के बर्णन, स्वभाव चित्रों के चित्रण, देशानुराग बर्द्धन, जाति देश और समाज के उन्नति-साधन की ओर बिशेष है, और इसी लिये इसी प्रकार की कविता अधिकता से लिखी जाने लगी है, शृंगार रस की कविता भी दृष्टि गत होती है, परन्तु अत्यन्त विरल। जब रुचि विकार की यह अवस्था है तब, काव्योपबन, समान ग्रंथ लेकर आप लोगों की सेवा में उपस्थित होना, अवश्य काण्ड ज्ञान शून्य होने का परिचय देना है, क्योंकि ग्रन्थ की अधिकांश भाषा ब्रजभाषा है और कविता भी अधिकतर शृंगाररसमयी है। तथापि मैं दो कारणों से इस को सेवा में उपस्थित करने के लिये बाध्य हूं—एक तो मेरे जीवन की बहुत सी घटनाओं पर इस के आशयों द्वारा आलोक पड़ेगा, दूसरे अब भी ऐसे सहृदय उपस्थित हैं, जो ब्रजभाषा का आदर करते हैं, और शृंगार रस की कविता मज़े लेलेकर पढ़ते हैं॥

आज तक मेरे पाँच कविताग्रंथ (प्रेमाम्बु बारिधि, प्रेमाम्बु प्रवाह, प्रेमाम्बु प्रस्रवण, प्रेमप्रपंच और प्रेमपुष्पोपहार) प्रकाशित हो चुके हैं। चुनीहुई कवित्तों का एक "शृंगार सिन्दूर" नामक नायका बिभेद का ग्रंथ और है, परन्तु अभी वह मुद्रित नहीं हुआ है। कारण यह कि प्रथम तो ग्रंथ अधूरा है, दूसरे उस में कुछ नवीनता उत्पादन की आव-

श्यकता है, अन्यथा अब ग्रंथ के समादृत होने की आशा नहीं है। उक्त ग्रंथों में संगृहीत कविताओं के अतिरिक्त आज तक की शेष समस्त कवितायें इस "काव्योपवन" में एकत्रित की गई हैं। बाल्यकाल में अपनी स्वाभाविक रुचि और भाषा में जो कविता की गई है, और आज कल की रुचि पर दृष्टि रख कर कुछ परिमार्जित बिचार एवम् बुद्धि द्वारा जो विषय लिखे गये हैं—उन में से अधिकांश का इस में संग्रह है। यह मैं स्वीकार करूंगा कि इस के कतिपय अंश की कविता जैसी चाहिये वैसी मधुर और उत्तम नहीं है। परन्तु यह जान कर इस विषय में आप लोग मुझ को अवश्य क्षमा करेंगे कि इस में उस अवस्था की कविता भी संगृहीत है, जिस समय में साहित्य पथ में दो चार डग भी भली प्रकार नहीं रख सकता था॥

इस ग्रंथ में चौबीस विषय संगृहीत हैं, उन में से कतिपय ऐसे हैं, जिन के विषय में कई एक ज्ञातव्य बातें इस प्रकार की हैं, कि जिन का वर्णन इस अवसर पर आवश्यक जान पड़ता है। अतएव मैं विषय क्रम से यथा रीति उन का वर्णन करता हूं॥

कबीरकुण्डल—यह बहुत प्राचीन रचना है। जिन दिनों मैं मिडल वरनाक्यूलर में शिक्षा पा रहा था, राजा शिव प्रसाद की पहली गुटका कोर्स में थी, उस के अन्त में कबीर साहब के कुछ दोहे भी हैं। स्वर्गीय पूज्य पितृव्य चरण महात्मा पण्डित ब्रह्मा सिंह जी का नियम था कि पाठशाला में जो कुछ मैं पढ़ कर आता, उस को घर पर वह मुझ से सुनते, और साथ ही उचित शिक्षा भी देते। इस नियम के अनुसार उन्हों ने (कबीर साहब, के दोहों को भी सुना) और उन के सम्बन्ध में बहुत सी बातें बतलाईं। इन दिनों मैं उक्त महात्मा से "रूप दीप" पिंगल भी पढ़ रहा था। "सब आयो इस एक मैं डार पात फल फूल। कबिरा पीछे का रहा गहि पकरा जिन मूल॥" एक दिन उन्हों ने कबीर साहब के इस दोहे की व्याख्या मुझ को बतलाई। बाल स्वभाव चपलता बश उसी दिन मैंने व्याख्यानुसार दोहे को कुण्डलिये में परिणत कर दिया। इस पर उक्त महोदय बड़े प्रसन्न हुये, और मुझ से कुल दोहों पर कुण्डलिया बना डालने के लिये कहा। मैंने भी आज्ञा पालन की, और

कई एक दोहों पर कुण्डलिया बना डाली। इन्हीं कुण्डलियों का संग्रह "कबीरकुण्डल" है। एक बार "रसिक" रहस्य के नाम से छोटे ग्रंथ के आकार में 'कबीरकुण्डल' खड्गविलास प्रेस बांकीपूर में छपा था, परन्तु अब संशोधित और परिवर्द्धित हो कर "काव्योपवन" में सन्निवेशित किया गया है। यद्यपि इन कुण्डलियों में कोई कवितागत विलक्षणता नहीं है, किन्तु यह प्रगट है कि जीवन में सदुपदेश की बहुत बड़ी आवश्यकता है, और आशा है कि यह कतिपय कुण्डलिया इस विषय में अवश्य उपयुक्त पाई जावेंगी॥

दृष्टान्त कलिका—सुप्रसिद्ध साहित्यकार "कुसुमदेव" कृत संस्कृत दृष्टान्त कलिका का यह भाषानुवाद है किन्तु अविकल अनुवाद पर विशेष दृष्टि नहीं रखी गई है, बरन भाषा की सरसता और भाव का विचार रख कर स्वतंत्र अनुवाद से काम लिया गया है। कहीं कहीं मूल दृष्टान्त और भाव में भी परिवर्त्तन हुआ है-परन्तु बहुत कम। तीन श्लोक सानुवाद मैं नीचे लिखता हूं—उन के द्वारा अनुवाद की प्रणाली का बहुत कुछ ज्ञान होगा॥

श्लोक।

गुणानर्चन्ति जन्तूनां न जाति केवलां क्वचित्।
स्फाटिकं भाजनं भग्नं का किन्यापिन गृह्यते॥ १॥

दोहा।

पूजत गुन जन्तून के, नाहिं केवल ही जात।
फूटो भाजन फटिक को, कौड़िहुं को न विकात॥

श्लोक।

काल क्रमेण परिणाम वशादनव्या।
भावा भवन्ति खलु पूर्वमतीव तुच्छा॥
मुक्तामणिर्जलद तोय कणोप्यणीयान्।
संपद्यते च चिरकीचकरंध्रमध्ये॥ २॥

दोहा।

काल पाइ बिधि बस सरस, भाव न लहत विकास।
मुक्ता वारो घन कनहुं, नसत कबहुं परि बांस॥ २॥

श्लोक ।

धन मपि परदत्तं दुःखमौचित्य भाजाम् ।
भवति हृदित देवानन्दकारी तरेषाम् ॥
मलय जरसबिन्दुर्वर्द्धते न प्रसभम् ।
नयति चरस बाहा देव मत्यन्तमत्र ॥ ३ ॥

दोहा ।

दुखद धनहु पर के मिले, लहत सबै उर प्यार ।
मलय गंध तरु गन गहत, जदिप सहत कुठार ॥ ३ ॥

समस्यापूर्त्ति—समय समय पर समाचारपत्रों और मासिकपत्रों में जो समस्यायें प्रकाशित होती रही हैं, उन में से कितनी समस्याओं की पूर्त्ति का संग्रह—यह "समस्यापूर्त्ति" है । कोई कोई पूर्त्ति इस में ऐसी भी है, जो किसी विद्वान किम्बा कवि की तत्काल प्रदत्त समस्या पर की गई है । एक समस्या की पूर्त्ति कई प्रकार से किया जाना, कवियों की दृष्टि में बहुत दिनों तक आदर की वस्तु रही है, अब भी यह विचार बिल्कुल लोप नहीं हो गया है, और यही कारण है कि इस समस्यापूर्त्ति में आप लोग एकही समस्या पर बीसियों पूर्त्तियां पावेंगे । इस तरह की पूर्त्तियों में जो सब से उत्तम पाई गई—वह "शृंगार सिन्दूर" में संगृहीत हैं-शेष पूर्त्तियां यहां लिखी गई हैं । ऐसे ही उद्योगों का फल "षट्ऋतु दर्पण" की भी कविता है, परन्तु "समस्यापूर्त्ति" में सन्निवेशित न कर के "षट्ऋतु दर्पण" नाम से वह पृथक लिखी गई है । इन पूर्त्तियों में से अधिकांश प्रथम प्रयत्न का फल हैं-हां ! कोई कोई पूर्त्ति ऐसी भी है कि जिस की रचना का काल वर्त्तमान ईसवी शतक के अन्तर्गत है ॥

"मयंकनवक" और "दिनेशदशक"-यह दोनों कविता "कल्पित छन्द" में की गई है । "कल्पित छन्द" कोई छन्द नहीं है, यतः इस छन्द की कल्पना मैंने की है, अतएव इस का नाम भी मैंने "कल्पित छन्द" ही रखा है । यह छन्द शार्दूल विक्रीड़ित छन्द की छाया लेकर निर्माण किया गया है । शार्दूल विक्रीड़ित संस्कृत के अपर छन्दों की भांति वर्णात्मक छन्द है—लक्षण उस का यह है—

श्लोक।

आद्यं यत्र गुरुत्रयं प्रियतमे षष्ठम् ततश्चाष्टमम्।
सन्त्येकादश तत्र यस्त दनुचेदष्टा दशाद्यान्तिमाः।
मार्तण्डैर्मुनि भिश्च यत्र विरतिः पूर्णेन्दु बिम्बानने।
तद्वृत्तं प्रवदन्ति काव्य रसिकाः शार्दूल विक्रीडितम् ॥१॥ श्रुतबोध ॥

भाव श्लोक का यह है कि जिस के आदि में तीन और छठें, आठवें, बारहवें, तेरहवें, चौदहवें, सोलहवें, सत्रहवें स्थान पर और अंत में गुरु और शेष स्थानों पर लघु होवे—साथही बारह और सात अक्षर पर बिराम होवे, तो ऐसे चार चरण के छन्द को शार्दूल विक्रीड़ित कहते हैं। यहां पर यह स्पष्ट है कि यह छन्द उन्नीस अक्षर का है, जिस में बारह और सात अक्षर पर विराम है, परन्तु इस बारह और सात अक्षर के मध्य भी मुख्य २ स्थानों पर गुरु और लघु का नियम है। उर्दू भाषा के समस्त छन्द मात्रिक हैं, अतएव वज़न पर दृष्टि रख कर उस में बिना स्थान निर्देश के लघु गुरु अक्षरों का व्यवहार किया जाता है—इस से वर्णात्मक छंदों से उस के छंदों की रचना में बहुत कुछ सुविधा होती है। इस के अतिरिक्त मेरा निज का अनुभव है कि मात्रिक छंदों की रचना में बर्णात्मक छन्दों की अपेक्षा बहुत कुछ स्वतंत्रता रहती है। यहां यदि अभ्यास का झगड़ा उठाया जावे तो कहा जावेगा कि अभ्यास प्रधान बस्तु है, जिस को जिस प्रकार के छन्द का पूरा अभ्यास है, उस की रचना में उस को बहुत कुछ स्वतंत्रता और सुबिधा रहती है। परन्तु बक्तव्य तो यह है कि यदि बर्णात्मक और मात्रिक दोनों छन्दों में समान अभ्यास है, तो विशेष सुबिधा किस छन्द की रचना में होगी। मुझ को आशा है कि—अनुभव प्राप्त सुजन यह अवश्य स्वीकार करेंगे कि मात्रिक छंदों की रचना में ही विशेष सुविधा होगी। निदान इसी विचार के बशीभूत होकर एक दिन मैंने यह चेष्टा की कि क्या शार्दूल बिक्रीड़ित को मात्रिक छन्द का रूप नहीं दिया जा सकता है? और यदि दिया जा सकता है तो किस नियम के साथ। मैंने कुछ काल सोच विचार कर यह निश्चित किया कि अट्ठारह मात्रा और बारह मात्रा पर बिराम का नियम रख कर यदि बिना स्थाननिर्देश के भी लघु

गुरु का प्रयोग किया जावे, और बारह अक्षर एवम् सात अक्षर पर विराम का बंधन भी न रखा जावे, तो भी रचना हो सकती है, और यह छन्द ठीक शार्दूल विक्रीड़ित के ढंग का होगा। यति में कुछ अवश्य अन्तर पड़ेगा, परन्तु अन्तर पड़ने से क्या दोष आवेगा, अपेक्षित तो यह है कि यति भंग न होने पावे। निदान मैंने अपनी इस कल्पना के अनुसार एक छन्द की कल्पना कर के इसी छन्द में मयंक नवक और दिनेश दशक की रचना की है। तीस मात्रा के छन्दों के प्रस्तार से भी यह रूप उपलब्ध हो सकता है, परन्तु इस वज़न का कोई छन्द तीस मात्रिक छन्दों में अबतक निर्णीत नहीं है, जो दो तीन छन्द प्रचालित हैं, उन का वज़न दूसरा है। प्रायः इस प्रकार का कार्य्य रक्षण शील दल द्वारा अनुमोदित नहीं होता, अतएव वह लोग इस प्रकार के अनधिकार हस्तक्षेप को बहुत अनुचित समझते हैं और इस दशा में यह अवश्य है कि मेरी चपलता भी उक्त सुजनों की दृष्टि में अच्छी न समझी जावेगी। परन्तु बिनीत प्रार्थना यह है कि मैं ने उक्त छन्द की कल्पना सर्व साधारण में प्रचार के उद्देश्य से नहीं की है, और न इस को सर्व मान्य बनाना मेरा इष्ट है। मैं ने एक विचार के वशीभूत होकर यह कार्य किया है, और दो विषय रचकर इस कार्य्य की परीक्षा भी की है। संभव है कि मैं भ्रम प्रमाद में भी पड़ा होऊं। आशा है कि विबुध गण यदि उचित समझेंगे तो इस विषय में अपना वक्तव्य प्रकाश करेंगे।

भगवती पंचक-पं० विष्णु सिंह प्रख्यात नाम पं० बनारसी सिंह-मेरे पूज्य पितृव्य चरण हैं-बीस बर्ष से अधिक हुआ कि एक दिन विषम ज्वर से वह अत्यन्त पीड़ित हुये जिस समय उन का कष्ट उत्तरोत्तर वृद्धि पर था, उन्हों ने मुझ को बुलाया, और आज्ञा दी कि कुछ कविता रचकर जगज्जननी से रोग निवृत्ति की प्रार्थना करो। निदान भगवती पंचक लिख कर उन की आज्ञा का पालन किया गया। परमेश्वर की विचित्र महिमा है, कि भगवती पंचक लिखे जाने के दूसरेही दिन उन का ज्वर जाता रहा। संभव है कि इस को संयोग कहा जावे-परन्तु क्या इस को बिश्वास का माहात्म्य नहीं कह सकते ?

नख शिख—एक दिन कुछ भावुक जनों के साथ पीयूषवर्षी कवि वर विहारी लाल के दोहों की चर्चा हो रही थी, उसी समय मेरे जी में यह बात आई कि 'हरिऔध हज़ारा' नाम का एक हज़ार दोहों का काव्य में भी निर्माण करूं जिस में पांच पांच सौ दोहे नख शिख वर्णन और नायकाविभेद के हों। तदनुसार कार्य्य आरंभ हुआ। जिस समय मैं कपोल का वर्णन लिख रहा था, और एक सौ सत्तासी दोहे लिखे जा चुके थे। उस समय यह विचार अचानक हृदय में उठा कि जो समय और परिश्रम शृंगार रस की कविता करने में व्यय किया जा रहा है, यदि किसी उपयोगी और लोकोपकारक विषय में लगाया जावे, तो उत्तम होगा। निदान इस विचार ने मुझ को अगत्या उक्त कार्य्य करने से विरत किया, और मैं "अधखिला फूल" नामक सामाजिक उपन्यास निर्माण करने में संलग्न हुआ। परन्तु यतः यह दोहे परिश्रम कर के लिखे गये थे, अतएव मैं इन की ममता को विसर्जन न कर सका। और यही कारण है कि नख शिख शीर्षक देकर यह दोहे भी 'काव्योपबन' में सन्निवेशित किये गये। यद्यपि शिखा से कपोल तक का बर्णन 'नख-शिख' नाम का अधिकारी नहीं है. परन्तु यतः इन दोहों का जन्म नख शिख लिखने के उद्देश्य से ही हुआ है; अतएव इन के अधूरे संग्रह का नाम भी 'नखशिख' ही रखा गया।

शोकाश्रु—प्रातःस्मरणीय पं० प्रतापनारायण मिश्र के स्वर्गारोहण होने पर यह कविता लिखी गई थी। स्वर्गीय महाराजकुमार बाबू रामदीन सिंह जीने उक्त महोदय की मृत्यु होने पर 'ब्राह्मण' मासिकपत्र के कुछ अतिरिक्त नम्बर निकाले थे, जिन में उन के असमय मृत्यु पर हृदय विदारक कविता और लेख प्रकाशित हुये थे। शोकाश्रु भी उक्त पत्र में प्रकाशित हो चुका है एक महाशय इस को पृथक छपाने के लिये अनुरोध करते हैं परन्तु यह भी अन्य बिषयों के साथ 'काव्योपन' मेंही सन्निवेशित किया गया।

प्रशंसावली—तमसा कूल परिशोभी क़सबा निज़ामाबाद मेरी जन्म-भूमि है, यहां एक तहसीली स्कूल है, मेरे जीवन का प्रथम कर्म्मक्षेत्र

यही स्थान है। १६ जून सन् १८८४ ई० से १० जूलाई सन् १८६० तक मैं यहां अधिक अध्यापक और सहकारी अध्यापक रहा हूं। निज़ामाबाद ज़िला आज़मगढ़ में है। यह ज़िला उस समय स्वर्गीय पं० लक्ष्मीशंकर मिश्र एम. ए. की अध्यक्षता में था। वह बहुत दिनों तक इस प्रान्त में इन्स्पेक्टर और असिस्टेंट इन्स्पेक्टर मदारिस थे। उन को बालकों के मुख से हिन्दी भाषा किंवा उर्दू कविता सुनने का बड़ा अनुराग था, वह कभी २ प्रसन्न होकर बालकों को उत्तम कविता होने पर पुरस्कृत भी करते थे। किन्तु इस प्रकार की सम्पूर्ण कवितायें बालकों की कृत्य न होती थीं, प्रायः यह अध्यापकों द्वारा लिखी जाती थीं। क्योंकि उस समय प्रशंशित पं० जी के प्रसन्नता लाभ का एक मार्ग यह भी था। अतएव मैं भी उन के शुभागमन के समय अपने शिक्षक पं० रामवर्ण उपाध्याय द्वारा आज्ञापित हो कर—जो कि उस समय स्कूल के प्रथमाध्यापक थे—प्रति वर्ष ऐसी कविता करने के लिये बाध्य था। निदान इसी प्रकार की सम्पूर्ण कविताओं का संग्रह "प्रशंसावली" में है—कुछ कवितायें ऐसी भी हैं जो उक्त पं० जी से सम्बन्ध नहीं रखतीं। परन्तु उन की संख्या बहुत थोड़ी है। इन कविताओं को मैंने समय समय पर अपने कार्य्योद्धार के लिये लिखा है और अपने संकल्प में सफल भी हुआ हूं। परन्तु इन्हीं थोड़ी सी कविताओं ने अगत्या मुझ को ऐसा न करने की सुबुद्धि भी दी। क्योंकि जिस पुरुष के सन्निकट मैं स्वार्थसाधन के लिये कविता लेकर उपस्थित हुआ, उस ने मेरा कार्य्य तो अवश्य कर दिया, परन्तु उस की घृणित दृष्टि लाभ करने से मैं बंचित न रहा—एक बार एक महाशय कह भी उठे कि इतनी स्वार्थलोलुपता का कारण क्या है? निदान इन व्यवहारों से मुझ को अत्यन्त मर्म्माहत होना पड़ा—और दृढ़ता कर के यह प्रणाली त्याग करनी पड़ी। परन्तु क्या आश्चर्य्य है कि इस प्रणाली के त्याग करने से न तो मेरे कार्य्यक्षेत्र में कोई विघ्न उपस्थित हुआ, और न मेरे उचित सम्मान में किसी प्रकार की बाधा पड़ी। विपन्न जन दूसरों की अनुचित चाटुकारी कर के अपना जीवन निर्वाह करने के लिये बाध्य हैं—अतएव उन को इस के पक्ष

पाठन से अवश्य लाभ होगा। और वह भी यथा समय इसी प्रणाली से अपना कार्य्योद्धार कर के अपने कष्टमय जीवन की रक्षा कर सकेंगे। किन्तु साधारण पाठकों को प्रशंसावली के पठन से किसी विशेष लाभ की संभावना नहीं है। हां! इस बात का अनुभव उन को अवश्य होगा कि एक स्वार्थान्ध पुरुष निजस्वार्थसाधन के लिये कहां तक सत्यता का अपलाप कर सकता है।

उक्त विषयों के अतिरिक्त और सब विषय थोड़े और छोटे छोटे हैं, और उन से सम्बन्ध रखनेवाली कोई बात ऐसी नहीं है कि जिस में कुछ मुख्यता होवे। केवल इतना और निवेदन करना है कि इस ग्रंथ में ब्रजभाषा और खड़ी बोली—दोनों प्रकार की कविता संगृहीत है। ब्रजभाषा की कविता अधिकतर, शृंगाररस की है, परन्तु खड़ी बोली की जितनी कविता हैं, वह सभी सामयिक और परिमार्जित रुचि की हैं। दोनों प्रकार की कविताओं में माधुर्य्य और लालित्य कितना है और जिस उद्देश्य से वह लिखीगई हैं, उस में उन्हों ने पूर्णता लाभ की है या नहीं, इस विषय में मेरा कुछ कथन करना नितान्त गर्हित होगा क्योंकि ऐसा करना अपनी कविता की आलोचना में आप प्रवृत्त होना है। अतएव मैं इस की उचित मीमांसा भाषामर्म्मज्ञ सहृदयजनों पर छोड़ता हूं। ब्रजभाषा की कविताओं में "दृष्टान्त कलिका", "विनोद बयालीसा", "नखशिख", "शोकाश्रु" और "प्रमोदपंचक" इत्यादि एवम् खड़ी बोली की कविताओं में "त्रिरत्न", "मयंकमयंक", "दिनेशदशक", "आर्य्यपंचक", "स्वर्गारोहण", "बालकविनोद" आशा है कि विशेष रुचि से पढ़े जावेंगे।

आजमगढ़ }
५—१०—०७ }

बशम्बद
हरिऔध।

विषयसूची ।

ॐ

काव्योपवन ।

मङ्गलाचरण ।

सवैया ।

बाधा बिनास करै सिगरी कलकुंजन बेनु बजावन-वारो । बिघ्न हरै हरिऔध सदा बृजबालन को बिलमावन-वारो ॥ मेटै हमारो अभाव सबै बृखभानुसुता को लुभा-वनवारो । मेरो अमंगल दूर करै वह मंगलमूल कहावन-वारो ॥ १ ॥

कवित्त ।

अगम अगाधा आदि प्रकृति अरूपा अजा अकरन करा सार सुरति समाधा को । स्वाहा स्वधा रमा उमा अमित सरूपवारी अगति अनादि आदि समन उपाधा को ॥ हरिऔध स्याम सुखदाता को हरितरंग जा तन की झाई परे होत पल आधा को । प्रकृति अबाधा मूल विस्वसुख साधा ऐसी नागरि सुराधा मेरी हरो भवबाधा को ॥२॥

दोहा ।

गुनिगन गुनिगानि गनित करि, करत जासु गुन गान ।
गुनातीत गनना रहित, जैति सकल गुनखान ॥१॥

थकित चकित चित बुध कहत, नइति जाहि सब काल।
ब्रजबालनकृत बहु श्रमित, जैति जग नमित बाल ॥२॥
अगम अनादि अरूप अज, अकल अभै अप्रमाद।
जैति ब्रह्म व्यापक बरद, बिगत बिखाद बिबाद ॥३॥
दुरित दोख दुख दल दलन, जगत अमंगल जैन।
जैति सकल कलिमल मथन, अमल कमल सम नैन ॥४॥
अतसी कुसुम सरिस सुतन, सरसीरुह सम नैन।
चैन दैन वारे जगत, जैति अमिय सम बैन ॥ ५ ॥
ब्रजबालन गोहन फिरत, गो दोहन रत होय।
मन मोहन वारो जगत, जै मन मोहन कोय ॥ ६ ॥
राजत सिंहासन सुभग, श्रीराधे रसिकेस।
सो छबि सेस न करि सकत, बरनि सारदा सेस ॥ ७ ॥
इत ऐहो कबहूं लला, तो जैहो फल पाय।
इमि कहि दै तारी हँसत, राधे होहु सहाय ॥ ८ ॥
नाना बाधन दूर करि, तजि सब साधन सोग।
जग जाको साधन करत, जैसो साधन जोग ॥९॥
अनगन जतन किये कहो, पावै मन किमि वाहि।
मान न चाहत जगत मैं, जीव मनन करि जाहि ॥१०॥

दशगुरुप्रशंसा।

छप्पय।

जैति भगत तन धरन सुखद जन श्रीगुरु नानक।
जय श्री प्रभु बल बीर काज बितरक बहु बानक॥
जय निज बचन दिनेस हरन तम त्रिभुवन बहुबिधि।
जै रत परमानन्दजगत बंदित मंगलनिधि॥
जय जैति जैति भवभय समन, जगहितरत संकटहरन।
हरिऔध राखि हिय में मयाहित मलीन जनहूं करन॥१॥
जैति ज्ञानघन हरित करन बर रूखी प्रेम पथ।
जैति भुवन जन केकि कुलन आनन्द कन्द अथ॥
जैति सरित स्रुति सार भक्ति स्रोतिहिं बिसतारक।
जैति प्रेम बर बिटप सरस करि जन निसतारक॥
जय जैति कालुकुल कमल रबि श्रीगुरुअंगद बपुधरन।
हरिऔध अमित कलिमलमथन भूरिभाग्य अकरनकरन॥२॥
जैति अटल पथज्ञान अटल करता दुख हरता।
जैति जगत के जीवन को मन प्रमुदित करता॥
जैति अलौकिक करम धरम रत बिरति सहायक।
जैति क्रोध मद लोभ आदि अपवादन घायक॥
जय जयति जैति जगजालहर श्रीगुरुअमर अकालप्रिय।
प्रभु करहु क्यों न लखिप्रीतिरति बास सुथलहरिऔधहिय ३
अति प्रचंड भवमारतंड दीधित ते आकुल।
व्यथित थकित नर भ्रमित स्रमित पथ कलिकलमखकुल॥
दुसह ताप जग धूप तपित अतुलित आकुल मन।

बहुत तृखित ततकाल तोय हित ब्याकुल प्रति छन ॥
अवलोकि तासु अस गति कियो अमित अपूरब सुधासर ।
जय रामदास गुरु जग बिदित हरिऔध संताप हर ॥४॥
जैति अम्बु परिपूरित प्रतिपल प्रगटत पालक ।
जैति थान अहि वक्र नक्र क्रोधादिक घातक ॥
जैति अज्ञता सम्बुकास्पद खल मल सज्जित ।
जैति मोह कर भयदलोल कल्लोल सुरज्जित ॥
जे अकुपार जगसेतुकृत धृत कलिजित नर अपति पत ।
जय अति उदारचित औधहरि बिमलब्रह्म बेदांतरत ॥५॥

जैति प्रबल परतापधारि परिकृत महिपावन ।
प्रबल खलन दालि मरदि जैति रज मांहिं मिलावन ॥
जैति मदोत्कट मान मथन प्रमुदित मन स्वामी ।
जैति सरबदा सुजन सुखद सब भांति अकामी ॥
जय जैति जैति जग ज्ञानप्रद, श्रीमद हरि गोविन्द गुर ।
हरिऔध सुरुचि अभिरुचि निरखि बास करहु सुचि हियस्वपुर ६

जय प्रकृष्ट उत्कृष्ट श्रेष्ठ पालक श्रुतिसासन ।
जय भवाब्धि बर तरणि तूर्ण तरकित तमनासन ॥
जय प्रतप्त तपनीय ताप तापन तुरकन तन ।
जय तराक तोयेस बिस्व बन्दित गुनिजनगन ॥
जै गम्य ज्ञान गरबित गरन गुनित गुनिन गायित गतन ।
हरिऔध गुप्त गत अगति गति श्रीगुरुबर हरिरायगन ॥७॥
जयति बिगत ब्यामोह बाल बपुजन सुखदानी ।

जयति बिरति रति रूप बिबिध बहु बिरद निसानी ॥
जैति सकल सुभ करम धरम साधक प्रतिपादक ।
जय अज्ञहुँ उर मांहिं ज्ञानअंकुर उतपादक ॥
जय ब्यक्ति बर्य्य बिकसित बदन बिपुल बुद्धि बर बानिप्रद ।
हरिऔध बिखम बाधा कदन श्रीहरि कृष्ण बिमल बिरद ॥८॥
जैति बिखम बैखम्य बिस्व बाधक बिरागरत ।
जैति ब्यर्थ ब्यवसाय ब्यवच्छेदक अब्यग्र गत ॥
जैति ब्यक्तिबर व्यक्त ब्यवस्था वेद बिकासक ।
जय बिकार ब्यभिचार ब्यंगता बानि बिनासक ॥
जय ब्याप्त बिस्वरत बिरत ब्रत ब्रात्यब्याघ्र ब्यतिरिक्त ब्यय ।
हरिऔध बिबुध बर गुन बलित श्रीगुरु नवम बिमल हृदय ॥९॥
जय उतफुल्ल उदार उदान समान उपासित ।
जय उरगत उदबेग उपद मन उपद उदासित ॥
जय उत्यक्त उपद्रवादि उतुंग उजागर ।
जय उद्धत उनमत्त उदघटन उपगम आगर ॥
जय उनमनादि उनमन उदित उनमूलन उतसाह अरि ।
हरिऔध रखत उपरति अधिक उर श्रीगुरु गोबिन्द हरि ॥१०

दोहा ।

ग्रथित गूढ़ गुरु गुन गनन, गूढ़ गौरव गति ज्ञान ।
गुरुता गुंफित गुरु दसक, गाइ गहहु गुरु मान ॥१॥

दोहा ।

जय जग ब्यापक रत्त बिमल, ज्ञान खान मतिऐन ।
गुरु नानक आनन्द निधि, संतन जन सुख दैन ॥१॥

अनुपम गुन आलय अमित, महिमा युत सुखकंद ।
गुरु नानक असरन सरन, दरन दीन दुख दंद ॥२॥
आरति हरन कृपायतन, जन हित रत सब काल ।
जगत अमंगल जै करन, कालूलाल कृपाल ॥३॥
अमल करनवारे समल, मानस परम दयाल ।
कालूकुल कल कमल रबि, कालि कलमख के काल ॥४॥
परवरतक जग सरल पथ, लै स्रुति सासन सोध ।
जय अबोध जीवन करन, वारे सदा सबोध ॥५॥
बिमल ज्ञान बर बारिमय, जन को जीवन जोय ।
सिखि सिख गन धीरद जयति, नानक नीरद कोय ॥६॥
उदयकाल कोउ किमि परै, जगत जाल तम कूप ।
बारिज बेदी वंस के, बिमल बिभाकर रूप ॥७॥
कलह कुपथ कुकरम कपट, कालि कुनीति को काल ।
कल कमाल वारो अहै, कालूकुल को लाल ॥८॥
जग जीवन नानक भये, तजि भूतल को भोग ।
पावन कही पदावली, पल पल गावन जोग ॥९॥
नानक उनमूलन करी, केते जन की भूल ।
मत सुख मूल सरलबिरचि, स्रुतिपथ के अनुकूल ॥१०॥
स्रुति सरोज मकरंद को, मंजुल मत्त मिलिन्द ।
कलुख कालिमा को अहै, कालूलाल कलिन्द ॥११॥
बगरी चांदनि के सरिस, करत प्रमोद प्रकास ।
कलँगीधर की देखिअत, कल कीरति चहुँ पास ॥१२॥

होती जो सोढीस नहिं, तेरे तप मैं ताब।
आब रहेहू होत तो, आबहीन पंजाब ॥१३॥
तू होतो सोढीस नहिं, तो बनि कै बेआब।
सब हिन्दू पंजाब के, बदि होते गरकाब ॥१४॥
तपतो जो पूखन सरिस, सोढी भूखन नाहिं।
कैसे को टारत कहो, भारत भुव तम कांहिं ॥१५॥
लखि भारत दुख सोढि बर, होत जो आरत नाहिं।
को आरज कुल को करत, तो कारज जग मांहिं ॥१६॥
जो जग मैं नहिं जनमते, सोढीकुल सिरताज।
प्रबल केहरी लौं बनत, सबल न सिंहसमाज ॥१७॥
भूलेहू अकुलात नहिं, लहत जात अति प्यार।
गावत गुन सोढीस मन, पावत मोद अपार ॥१८॥

विद्यागुरु पूज्य पितृव्यचरण महात्मा पंडित ब्रह्मासिंह जी की प्रशंसा।

दोहा।

बिबुध बृन्द बन्दित बिबिध, बिरद बिभूखित जोय।
ब्रह्म बिदित बेदान्त रत, जैति ब्रह्म हरि कोय ॥१॥
निगुन निगुनता मैं लखत, सगुन सगुनता जौन।
बिना ब्रह्म हरि को जगत, सब सदगुन को भौन ॥२॥
जो न गिरा गंभीर तौ, करति ब्रह्म हरि काम।
बनतौ कैसे काम को, तो हरिऔध निकाम ॥३॥
कृपा तिहारी ब्रह्म हरि, जो न होत भरपूर।
मिलत न तो हरिऔध लौं, खोजे हूं कहुं कूर ॥४॥
सजत न जो नहिं ब्रह्महरि, करतो मतन बखान।

कैसे जानत जगत गति, तौ हरिऔध अजान ॥५॥

सवैया।

लालन पालन प्यार सों कीनो अधीनता बालपने की परेखी। विद्या दई बहुभांति हिये उपजाई परेस की प्रीति बिसेखी॥ बापुरीं औधहरी मति होति है ब्रह्महरी तौ महानता पेखी। कानन केती कृपालुता हौं सुनी तेरी उदारता आंखिन देखी॥६॥

राजप्रशंसा।

कवित्त।

दैदै तापदापवारे बैरि बरिवंडहू को पूखन लौं प्रबल प्रताप हूं प्रचंड हो। बंदनीय बिसद उदार गुन हू की मात बंदनीयता हूं त्यों बिदित ब्रहमंड हो॥ हरिऔध नीकी नीति मंडित उमंड तेरो एरी भारतेश्वरी उदित नवखंड हो। परम उदंड दंडनीय दल दंडन में दोरदंड वारी तेरी कीरति अखंड हो॥१॥

सीपज सी सीप सी सतोगुन सी सारदा सी सरद पयोद हू सी सुखद प्रचंड हो। बकन सी बसन बिधौतसी बरफहु सी गंगबारि हू सी बंदनीय ब्रहमंड हो॥ हरिऔध हांसरस की सी हीर हारहू सी राजहंसनी हू सी गदित नवखंड हो। कलित कलाधर सी कंबु सी कुमुदहू सी कल कुंदहू सी तेरी कीरति अखंड हो॥२॥

देखि देखि नीकी नीति पालन प्रजा की नैन कीरति निहारि छाई सरिस अंजोरिया। बाघ बकरी को बारि

पीअत बिलोकि साथ बेगम बराक हू की परी हेरि बोरिया। हरिऔध दयादान दिषत दिगन्त जाको दिनहू को रोकत न जाके द्वार पोरिया। जोरि जोरि हाथ जगदीसहिं मनावै सदा जुग जुग जीओ महारानी विकटोरिया ॥३॥

प्रजा पुंज पंकज समूह की दिनेस जोति सकल सुनीति औखधिन की अँजोरिया। सेवक समाज सिखि बृन्द की अनूठी घटा कामधेनु ताकी जाको जुरत न बोरिया॥ हरिऔध कहै किती कुटिल कुनीतिन सों बिनसत भारत की अमिय कटोरिया। रंकन को कलपलता सी त्रान देन-वारी जुग जुग जीओ महारानी विकटोरिया ॥४॥

दरि दरि दुसह दिमाग दल द्रोहिन को करि करि कम्पित कितेक रूस कोरिया। पालि पालि प्यारे पुत्रसरिस प्रजान पुंज गौरव सों राखि कै गनीमहूं कि गोरिया॥ हरिऔध दारिद बिदारि दीन हीनहू को प्याइकै पियूषभरी प्यार की कटोरिया। जम सों जुगुत सों जलूम सों जयादिक सों जुग जुग जीओ महारानी विकटोरिया ॥ ५ ॥

विवुध बरूथ जगतीतल में जौलौं पढ़ैं सुठि इतिहास और कलित कहानी को। पाली जाय जौ लौं भूमि काहू एक भूपहू सों कोऊ पता पावै जौ लौं नीति की निसानी को॥ हरिऔध जौ लौं साम दाम दण्ड भेदहू को मंत्रिन बिचारैं धारैं बांकी बुद्धिबानी को। भ्राजै सुभ्र सुजस मही-तल में तौ लौं भूरि साठसालवारे प्यारे राज महारानी को ॥६॥

सवैया।

जाइ कै स्वर्ग पुलोमजा मैं लखी जोई उदारता धीरता बानी। औरो रती मैं लखी सुखमा हरिऔध प्रवीनता ओप औ पानी॥ सोई धरा इक कामिनी मैं लखी बंचित है मति यों अकुलानी। कैधों सची अहै कैधों रती अहै कैधों अहै विकटोरिया रानी॥७॥

जोरिबे को जगजाल जितेकन है मणिदीप सुजान की जानी॥ पालिबे को पथ प्रेम पताल मैं है हरिऔध रमा गुनखानी। दारिबे को दुख देवन को दिविलोक मैं है दिवि की ठकुरानी। नीकी सुनीति निबाहिबे को नित भूमैं अहै विकटोरिया रानी॥८॥

बानी गिरा सों सिया सों सतीपन लै सुरआपगा सों सत पानी। त्यों हरिऔध सची सों असंकता तेज घृताची सों लै अनुमानी॥ मान रमा सों दमा सों प्रताप लै छीन छमा सों छमा मनमानी। रूप रती सों सती सों सुओप लै बेधा रची विकटोरिया रानी॥९॥

हानि अरीन सिवानी समान बखानी करै पैन मानहिं ठानी। जानी सबै पै अजानी रही हरिऔध कबौं न करी मनमानी॥ आनी हिये में सुरानी समान उदारता लोक की काज प्रमानी। है महरानि हूं की महरानी दयावती श्री विकटोरिया रानी॥१०॥

दाहती द्रोहिन को दल को दुख दारती दासन दीनन दानी। भूतल भारत को भय मोचती भूपन भीरहूं को

सनमानी ॥ त्यों हरिऔध हितू न निहोरती तोरती हीनन की सब हानी। ताप निवारती तापिन को चिरजीवी रहो विकटोरिया रानी ॥११॥

"कबीरकुण्डल" अर्थात् महात्मा कबीर के दोहों पर कुण्डलिया।

कुण्डलिया।

जद्दिप हम कायर कुटिल खरे चाकरी चोर।
तद्दिप कृपा न छाड़ियो चितै आपनी ओर।
चितै आपनी ओर बड़न की है यह रीती।
तजि औगुन गन करहिं नीच हूं पै बहु प्रीती।
कहत सबै हरिऔध रावरो प्रभु जू तद्दिप।
अति पामर मतिमन्द पतित पुंगव हम जद्दिप ॥१॥
गुरू बिचारा क्या करै जो हिरदा भया कठोर।
नौ नेजे पानी चढ़े तऊ न भीजे कोर।
तऊ न भीजे कोर रहै जैसो को तैसो।
घन सों जग हित होत पै रहत ऊसर वैसो।
होय न कारो बसन सेत कौनिहूं प्रकारा।
करै कहा हरिऔध क्रूर हित गुरू बिचारा ॥२॥
जिन खोजा तिन पाइयां गहरे पानी पैठ।
हौं बौरी ढूंढन गई रही किनारे बैठ॥
रही किनारे बैठि पैठि नहिं खोजन लागी।
करि अमूल अनुमान कूलहूं सों उठि भागी॥
तजे बिना हरिऔध तरकना सिधं पाई किन।

लह्यो सांच सुख सौय जुगुत को जोहि कियो जिन ॥३

बालू जैसी करकरी उज्जल जैसी धूप।
ऐसी मीठी कछु नहीं जैसी मीठी चूप॥
जैसी मीठी चूप सांचहूं नहिं कछु तैसो।
रबि समान निकलंक मोद बरधक ससि जैसो॥
पूरन हित मनकाम सरस चिन्तामनि सालू।
पै पैठत इमि हरिऔध हिय जिमि जल बालू ॥४॥

नव द्वारे का पींजरा तामैं पंछी पौन।
अटकत अचरज जानिये गये अचंभा कौन॥
गये अचंभा कौन पौन पंछी है स्वासा।
नव द्वारे मुख गुदा लिंग द्वै द्दग श्रुति नासा।
तन पंजर मैं खुले सदा हरिऔध निहारे।
खग हित एक अनर्थ का कहव जहं नव द्वारे ॥५॥

गये अचंभा कौन अग्र तृन गत जल केरो।
गिरिबो अजगुत कहा टहरिबो ही तेहि बेरो॥
रची बालुका भीत ढहब हरिऔध न वंचन।
अतिही अचरज अहे तेहि खरो रहिबोही छन ॥६॥

द्वार धनी के परि रहे धका धनी को खाय॥
कबहूं धनी निवाजि हैं जो दर छाड़ि न जाय॥
जोदर छाड़ि न जाय एक दिन तो अस ह्वैहै।
ह्वै के धनी दयाल सबै दिन को दुख खवैहै॥
मिलिहैं सोइनहिं संक मनोरथ हैं जे जीके।
परो रहौ हरिऔध कैसहूं द्वार धनीके ॥७॥

साहब के दरबार में कमी काहु की नांहिं।
बंदा मौज न पावई चूक चाकरी मांहिं॥
चूक चाकरी मांहिं सबै है प्रभु के पांहीं।
पै ते तैसो लहैं जु जैसों सेवक मांहीं।
जांगर चोरी किये कहा धन को भरवासा।
होय कियेई खरो काज सबही कछु आसा॥८॥
चूक चाकरी मांहिं कियो अपनो सब पावै।
जानत सकल जहान बेदहूं यहै बतावै॥
कीकर सों हरिऔध आम को कहा सुपासा।
बिना किये प्रभु सेव कबौं सुख की नहिं आसा॥९॥
मेरा मुज को कछु नहीं जो कछु है सो तोर।
तेरा तुज को सौंपते क्या लागै है मोर॥
क्या लागै है मोर अहो मुरलीधर प्यारे।
जीव पिंड धन धाम सबै तव ऊपर वारे॥
सकल जगतगत बस्तु बिभव सुख है प्रभु तेरा।
पै समझत हरिऔध मंदमति है यह मेरा॥१०॥
दुख सुख एक समान हे हरख सोक नहिं व्याप।
परुपकार निहकामता उपजै छोह न ताप॥
उपजै छोह न ताप रोस ढिग भूलि न आवै।
सदा एकरस सान्त द्रोह नहिं परसन पावै॥
निसकलंक निसकपट सदा निसछल प्रभु सन्मुख।
सुगुन संत हरिऔध बिदित ए मेटन भौदुख॥११॥
जो तो को कांटा बुवै ताहि बोव तू फूल।

तोको फूल को फूल है वाको है तिरसूल ॥
वाको है तिरसूल बचन जासों अति ओखों ।
पै जो अस कृत करै होय ताको नहिं धोखों ॥
भलो कियो हरिऔध भलो नहिं करत सु कोजो ।
है पै सोई बीर बुरो पै भलो करै जो ॥१२॥
वाको है तिरसूल सुजन समझहु जिय मांहीं ।
जो गुर दीने मरत ताहि बिख दीजत नांहीं ॥
कर सों परसत ही प्रयास बिन मरत अहै जो ।
को ऐसो हरिऔध तासु हित बान गहै जो ॥१३॥
वाको है तिरसूल नहीं कछु संसय यामें ।
प्रगट जगत मैं सहम सोक बहुधा खल पावें ॥
घन सीतल मारुतहिं करत पै घन निदरत सो ।
यही हेत हरिऔध तुरतही तपत होत जो ॥१४॥
दुरबल को न सताइये जाकी मोटी हाय ।
मुये खाल की सांस सो सार भसम ह्वै जाय ॥
सार भसम ह्वै जाय जा सरिस दृढ़ कछु नांहीं ।
नर की कहा बिसात छार नहिं जो ह्वै जाहीं ॥
हरत्रिसूल हरिचक्र बज्र बज्री अति परबल ।
सो न करत हरिऔध जो करत हहरन दुरबल ॥१५॥
या दुनियां में आइकै छाड़ देय तू ऐंठ ।
लेना है सो लेइ लै उठी जात है पैंठ ॥
उठी जात है पैंठ मिलत सबही कछु या में ।
अर्थ धर्म कैवल्य काम ग्राहकगन पावें ॥

चोखो-सौदो करै पैंठ मों पैठि सवाया।
समझि हिये हरिऔध हाट की थित मित माया ॥१६॥
उठी जात है पैंठ गहरु करिबो नहिं नीको।
सौदो सोई करै होय जासों हित जीको।
चूकि गये हरिऔध या समय चूक सवाया॥
कारज जामें सधै करै सोई तजिमाया॥
ऐसी बानी बोलिये मन का आपा खोय।
औरन को सीतल करै आपौ सीतल होय।
आपौ सीतल होय कोऊ दुख नेक न पावै।
जो अपनो रिपु होय ताहु को हिय हुलसावै॥
पर मनमोहन काज सिद्धि जग में यह जैसी।
कहत सांच हरिऔध जुगुत कोई नहिं ऐसी ॥१८॥
दुख में सुमिरन सब करै सुख में करै न कोय।
जो सुख में सुमिरन करै तो काहें दुख होय॥
तो काहें दुख होय प्रगट लखियत जग मांहीं।
जो संजम नित करत होत ताको रुज नाहीं॥
बिना दंड निज पाठ रखत जो बालक सन्मुख।
नहिं पावत हरिऔध कबहुं सो ताड़न को दुख ॥१६॥
तो काहें दुख होय कहत हम भुजा उठाई।
ताहि कहा दुख होत जासु जदुनाथ सहाई॥
जबहीं प्रभु सो होत भूलि भवभोग बहिरमुख।
तबहिं होत हरिऔध या अधम को अतिही दुख ॥२०
एकै साधे सब सधै सब साधे सब जाय।

जो तूं सींचे मूल को फूले फले अघाय।
फूले फले अघाय चित्त की पूजे आसा॥
सिगरे कारज सरैं होय सब भांति सुपासा।
लहहिं नहीं कछु जगत मांहिं बहु साधन जेके॥
सोइ लहैं हरिऔध सिद्धि करि साधन एकै॥२१॥
फूले फले अघाय होय समहूं बहु नांहीं।
जो तिय पति हित करत चहैं कुल में सब ताही॥
सरै नहीं कोउ काज किये प्रति जल कन टेकैं।
तबै सरै हरिऔध होय जब घन की एकै॥२२॥
सब आयो इस एक मैं डार पात फल फूल।
कबिरा पाछे का रहा गहि पकरा जिन मूल॥
गहि पकरा जिन मूल गह्यो जाने मन कांहीं।
इन्द्रिन गहिबे हेत होत ताको श्रम नाहीं॥
है सेयो हरिऔध कृश्नपदपंकज को जब।
अहै कहा परवाह जो न हम सेयो सुर सब॥२३॥
माटी कहे कुम्हार सों तू क्या रूंधे मोहि।
एक दिन ऐसा होयगा मैं रूंधौंगी तोहि॥
मैं रूंधोंगी तोहि कछू बनिहै नहिं तोसों।
कहा जानि कै करत अहै रगरो तुम मोसों॥
हाड़ मांस कच आदि सबै निज मूल उपाटी।
ह्वैहैं क्रम क्रम सों बसुंधरा मैं मिलि माटी॥२४॥
मैं रूंधौंगी तोहि कहा तादिन तू करिहै।
सुत तिय नात कुटुंब मीत कोऊ न उबरिहै॥

है जैहै कछु काल मांहिं गहि जग परिपाटी।
लखतलखत जगजीव भूमि मैं मिलि जुलि माटी ॥२५॥
पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ पंडित भया न कोय।
ढाई अच्छर प्रेम का पढ़ै सो पंडित होय॥
पढ़ै सो पंडित होय सोई गुनवन्त कहावै।
जेहि खोजत सनकादि ताहि गहि नाच नचावै॥
लहै सिद्धि हरिऔध कामना बिनसहिं थोथी।
पावै पद निरबान प्रसंसत जाको पोथी ॥२६॥
पढ़ै सो पंडित होय भेद निगमागम बूझै।
जानि परै सत असत पंथ परमारथ सूझै॥
मिटै बाद हरिऔध तरकना बिनसहिं थोथी।
लहै सोई विज्ञान कह्यो जाको गहि पोथी ॥२७॥
चलन चलन सब कोइ कहै पहुंचै बिरला कोय।
एक कनक औ कामिनी दुरलभ घाटी दोय॥
दुरलभ घाटी दोय पैठि जामैं जग मांहीं।
निकसत कोऊ एक नतरु सबही रहि जाहीं॥
जिमि पंजर को बिहंग जालगत सफरी को गन।
तिमि नर को हरिऔध होय या घाटी बिचलन ॥२८॥
दुरलभ घाटी दोय महा भ्रम तम सों छायो।
ज्ञान दिनेस कलाहिं जासु ढिग जानन आयो॥
या घाटी मैं नहिं निबाह क्योंहू या दृग बल!
बिना खुले हरिऔध हृदय के दीह दृगंचल ॥२९॥
दुरलभ घाटी दोय निबहिबो जासों बेरो।

तिनहूं को हरिऔध कियो जिन जुगुत घनेरो ॥
नांधि याहि जग मांहि सोई पहुंचत पावन थल।
जाको मन कबहूं न होत या घाटी चंचल ॥३०॥
चाह घटी चिन्ता गई मनुआं बे परवाह !
जाको कछू न चाहिये सो साहनपति साह ॥
सो साहनपति साह इन्द्र को रंक बिचारै।
तीन लोक को बिभौ काहिं तृन सम निरधारै ॥
पारस को हरिऔध हेतु बिन जानै कांचा।
रहै सदा अलमस्त लोक की लगै न आंचा ॥३१॥
कलि का बाम्हन मसखरा ताहि न दीजै दान।
कुटुम सहित नरकै चला साथ लिये जजमान ॥
साथ लिये जजमान पै धरमरत जो होवै।
ताको तू दिल खोलि दान दै पातक खोवै ॥
नरक देत सों सबहिं आपहूं अन्तकाल गलि।
पै यह बदि हरिऔध सरग सुखदेत निदरि कलि ॥३२॥
साथ लिये जजमान कालिमा कुलहिं लगाई।
अपजस लै जगमांहिं फजीहत जग करवाई ॥
आप डुबंते बोरि आनहूं को बरबस छलि।
है मेटत मरजाद हाय हरिऔध अधम कलि ॥३३॥
साथ लिये जजमान याहि भाखत सब कोऊ।
है सुपात्र को दान सदा सुख बरधक दोऊ ॥
पै खल को हरिऔध दान दीबो है असमझ।
जैसे कूकर को खिआइबो व्यंजन बहुतक ॥३४॥

जहां दया तंहं धरम है लोभ जहां तंहं पाप।
जहां क्रोध तंहं काल है जहां छमा तहं आप ॥
जहां छमा तहं आप जहां मद सुख तहं नाहीं।
जहां काम हरिऔध अहै अपजस तेहि ठांही ॥
जहां मोह तहं ताप द्रोह जहं त्रास अहै तहं।
जहां तोख तहं सान्त तहां निरबान ज्ञान जंह ॥३५॥
जहां छमा तहं आप उचित सबही को याते।
तजब क्रोध औ लोभ होहिं सिगरे अघ जाते ॥
ग्रहन करब हरिऔध दया औ सुखद छमा कहँ।
ताहु थान पै बीर प्रान संकट होवे जहँ ॥३६॥
सांच बरोबर तप नहीं झूठ बरोबर पाप।
जाके हिरदे सांच है ताके हिरदे आप ॥
ताके हिरदे आप ईस निवसत नयधारी।
होत जगत में सब सुकाज को सो अधिकारी ॥
झूठो पाप कमाय करत दोउ लोक बिनासा।
पै साँचे हरिऔध कांहि सब होत सुपासा ॥३७॥
ताके हिरदे आप कहत पै बुधजन ऐसो।
गो द्विज परहितकाज झूठ कहिबो नहिं तैसो ॥
त्योंहीं परमनदुखद सोक कर अप्रिय अजाँचा।
उचित नहीं हरिऔध भूलिहूं कहिबो साँचा ॥३८॥
ताके हिरदे आप सकल पातक की रासी।
यही झूठ हरिऔध अहै खल जासु उपासी ॥
त्यों जेते जग सुकृत सबन को मूल अकांचा।

सज्जन सेवित सुखद यही है संचित साँचा ॥३९॥
सांचे स्राप न लागई सांचे काल न खाय।
साँचे को साँचा मिलै सांचे मांहिं समाय॥
साँचे माहिं समाय न साँचे को दुख लागै।
साँचे को जस मिलै भाग साँचे को जागै॥
सांचे को भय नहीं न साँचे को कोउ जाँचे।
साँचे की हरिऔध सिद्धि सुख पावैं साँचे ॥४०॥
साँचे मांहिं समाय स्राप झूठे को लागै।
बिदित जासु जस जगत कालगति सो किमि पागै।
साँचहिं साँचा मिलत रीति यह जगप्रति आसा।
साँचे के हरि में समाइबे मों न अनासा ॥४१॥
माला फेरत जुग गया पाय न मन का फेर।
कर का मनका छाड़िके मन का मनका फेर॥
मन का मनका फेर छाड़ि तू कर का मनका।
जो मन का सुख चहत और इत उत हित मन का॥
मनका का करि सकत जो न मन का गद टाला।
मित मन का हरिऔध करै तजि मन का माला ॥४२॥
मन का मनका फेर जो न मन की मति चीने।
कछू सिद्धि नहिं होय जोग जप तप ब्रत कीने॥
उचित अहै हरिऔध सबहिं याते सब काला।
मन को मारन मीत छोरि जप तप ब्रत माला ॥४३॥
मन का मनका फेर कहा मनका के फेरे।
जो इत उत हरिऔध मन भ्रमत इन्द्रिन प्रेरे॥

चहिये मन को गहन मिटै जासों भ्रमजाला।
चाहे असि कर गहै मह चाहे कर माला ॥४४॥
साहब सों सब होत है बन्दे सों कछु नांहिं।
राई को परबत करै परबत राई मांहिं॥
परबत राई मांहिं पलक में लोक सँवारै।
पलही में जग मांहिं प्रलय कौतुक बिस्तारै॥
नभ को धरती करै धरा को करै अकासा।
पाहन को हरिऔध देय पावन बिस्वासा ॥४५॥
परबत राई मांहिं लखै किन आँख पसारे।
नित नौ अघ जिन किये नाथ तिनहूं को तारे॥
महा पतित हरिऔध भरयो जामें औगुन सब।
हित ताहू को करत भरत पोखत सो साहब ॥४६॥
परबत राई मांहिं ऊंच को नीच बनावै।
नीचहुं को हरिऔध जगत सों ऊंच जनावै॥
दाहब सीतल बिरचि करै सीतल को दाहब।
साहब सेवक करै करै सेवक को साहब ॥४७॥
परबत राई मांहिं सदा जो पाप कमावै।
ताहू को प्रतिपालि दीनपति मन सुख पावै॥
जो अपने सों बिमुख कठिन ताको हित चाहब।
पै यामें हरिऔध अति निपुन है सो साहब ॥४८॥
बुरा जो दीखन में चला बुरा न दीखै कोय।
जो दिल खोजों आपना मुझ सा बुरा न कोय॥
मुझ सा बुरा न कोय मिले हम जासों चाही।

सो हमसों हित चह्यो मिल्यो है अति उत्साही ॥
पै जासों हरिऔध मिले हम बगल रखिछुरा ।
तासों दुख मोहिं मिल्यो हुतो जद्यपि सो न बुरा ॥४६॥
मुझ सा बुरा न कोय जग पतितपावन प्यारे ।
तुम तजि मो सम पतित काहिं कहु कौन सुधारे ॥
कहा भयो हरिऔध बुरा इन मांहिं जुराजो ।
तुम तो पावननाथ ताहु को बंस बुरा जो ॥५०॥
मुझ सा बुरा न कोय न कोऊ मुझ सा पापी ।
करत सदा अपराध देखि जाको महि कांपी ॥
ऐसो खल हरिऔध नाथपद सों न मुरा जो ।
सो केवल वा बिरद आस है चहत बुरा जो ॥५१॥
मुझ सा बुरा न कोय आइ जग मैं मद छाई ।
जो बहुजन को अनायास अरि लियो बनाई ॥
कोऊ ऐसो नांहिं होय हरिऔध दुरा जो ।
आपहिं बैरी मीत लेत करि होत बुरा जो ॥५२॥
देह धरे को दंड है सब काहू को होय ।
ज्ञानी भुगते ज्ञान सों मूरख भुगतै रोय ॥
मूरख भुगतै रोय आपनी मूरखतासों ।
होत लाभ हूं थोर ज्ञान जो भाखै तासों ॥
पै एहो हरिऔध दौरि दुखसिंधु परे को ।
है निकारिबोही प्रधान फल देह धरे को ॥५३॥
मूरख भुगतै रोइ ईस सिर देइ बुराई ।
अपनो करम बिसारि दूख सों बहु अकुलाई ॥

नहिं समझत हरिऔध भूलि यह ज्ञान परे को।
कै सुख कै दुख मिले जगत में देह धरे को ॥५४॥
मूरख भुगतै रोय समझि जग को सुखरासी।
छोभ अधीरज दंभ आदि को होय उपासी॥
पै ज्ञानी हरिऔध जानि दुख रूप बरेको।
धीर छमादिक धारि लेत फल देह धरेको ॥५५॥
काल करे सो आज कर आज करे सो अब्ब।
पल में परलै होयगो बहुरिं करोगे कब्ब॥
बहुरि करोगे कब्ब है गहरु को छन नांहीं।
झिझियाघट जल सरिस आयुदिन छीजत जाहीं।
कहा का समय होन न क्योंहूं जानि परेसो।
याहू पै हरिऔध है बिदित काल करेसो ॥५६॥
बहुरि करोगे कब्ब लखत परतछ यहि ठाईं।
नसत बिलम्ब न होत बारि बुद बुद की नाईं॥
याहू पै हरिऔध जब समै आनि परेसो।
कियो नहीं कछु होत त्यागि जो काल करेसो ॥५७॥
बहुरि करोगे कब्ब कहत हम भुजा उठाई।
नहिं बनिहै तब कछू काल जब ग्रसिहै आई॥
याते जो कछु करन बेगही करि पथ ताका।
भजे नाथ को हरिऔध है सब कछु जाका ॥५८॥
बहुरि करोगे कब्ब अहै यह मतलब याको।
आरस तजि हरिऔध करै है करनो जाको॥
कबौं न ऐसो नसै काज त्रुटि कीने जैसो।

औ यह जाने हिये होत जो काल करे सो ॥५६॥
पाव पल्ल की सुध नहीं करे काल को साज।
काल अचानक मारिहै ज्यों तीतर को बाज॥
ज्यों तीतर को बाज मीन को ज्यों बक मारे।
ज्यों मृग को मृगराज क्यों न फिर सुरति सम्हारे॥
जो ह्वै सकै सो करै आज तजि आस कल्ल की।
ह्वै सचेत हरिऔध त्यागि ढिल पावपल्ल की ॥६०॥
ज्यों तीतर को बाज होयगी सुधिहू नांहीं।
रहि जैहै पछतात ससोकित ह्वै हिय मांहीं॥
अरे अंध नर करत कहा फिर आस कल्ल की।
भजत क्यों न हरिऔध छोरि त्रुटि पावपल्ल की ॥६१॥
ज्यों तीतर को बाज जदपि यह सबही जानै।
तदपि न ऐसो करै जो दोऊ थल सुख मानै॥
अजब अहै हरिऔध या जगत को भरमाव।
जासों नर दुखही को दिन प्रति करत उपाव ॥६२॥
आस पास जोधा खड़े सबै बजावैं गाल।
माँझ महल सों ले चला ऐसा बरबस काल॥
ऐसा बरबस काल सु कब आयो क्यों आयो।
कैसे प्रान निकासि कौन पथ होइ सिधायो॥
देख्यो तक नहिं कोय ह्वै गये सबहिं निरास।
नस्यो कोह हरिऔध बिजय की जिनसी आस ॥६३॥
ऐसा बरबस काल कौनबिधि सों कब आयो।
कैसे प्रान निकासि कौन पथ होइ सिधायो॥

लख्यो न किनहूं नेक कियो कलबल प्रकास जो।
खरे रहे हरिऔध बीर सब आस पास जो ॥६४॥
ऐसा बरबस काल न बल जासों कछु लाग्यो।
रहे जके से खरे छोरि मद मानहु भाग्यो॥
या छन करिबो उचित कहा भो नहिं प्रकास जो।
याते अपजस लह्यो बीर हे आस पास जो ॥६५॥
ऐसा बरबस काल कहा फिर धन जन आसा।
कैसो बल गज तुरग कहा तिय सुत भरवासा॥
जिय समझ्यो है कहा करत इन को बिसास जो।
तू तजि दै हरिऔध रखत कछु आस पास जो ॥६६॥
ऐसा बरबस काल बचत जासों कोउ नाहीं॥
करि कै जतन अनेक कैसहूं या जग माहीं॥
रोकि बायुगति करै लौह गृह में निवास जो।
तऊ नसै तेहि सौंह रहत नित आस पास जो।६७॥
माली आवत देखि के कलियां करी पुकार।
फूले फूले चुनि लिये काल हमारी बार।
काल हमारी बार हाय कछु सों कछु ह्वै है।
यह उपवन यह चंचरीक यह थल छुटि जैहै।
रहि जैहै जग मांहि नाहिं अपनी कछु लाली॥
पै एहो हरिऔध दया करिहै कब माली ॥६८॥
काल हमारी बार भोरही याथल आई।
लै जैहै चुनि मोहिं धारि चित में निठुराई॥
दैहै निरखन नाहिं नेक जग की परनाली।

बीचहिं करिहै नास आइ यह निरदय माली ॥६६॥
काल हमारी बार अहै पै कछु बस नाहीं।
हाय दैव का कियो कौन बिधि कहं चलि जाहीं॥
ज्यों है है सुधि कछू लखनहित जग की लाली।
त्यों दे है हरिऔध आइ मोको दुख माली ॥७०॥
साँईं तुम न बिसारियो लाख लोग मिल जाहिं।
हम से तुम कौ बहुत हैं तुम से हम को नाहिं॥
तुम से हम को नाहिं कौन यह जानत नाहीं।
जल को मीन अनेक एक जल मीनन काहीं॥
घन को हैं हरिऔध किते चातक चहुं पासा।
पै चातक को अहै एक घन ही की आसा ॥७१॥
तुम से हम को नाहिं प्रभो याते अपनाओ।
चितै आपनी ओर पतित हरिऔध तराओ॥
लखहु न भूलि मुरारि मया करि मो अघमाई।
दीन हीन अवलम्ब एक तूहीं है साँईं ॥७२॥
तुम से हम को नाहिं मया करि मोहिं निहारो।
सुमति देइ सब काल हमारी कुमति निवारो॥
लीजै मोहिं उबारि गीध गानिका की नाँईं।
तुम तजि को हरिऔध हितू जग मों है साँईं ॥७३॥
तुम से हम को नाहिं जगत हूं को कोउ नाहीं।
याते तजि तो चरन कमल प्यारे कहँ जाहीं॥
तुम ही ते सब काल होत है सबहि सुपासा।
सदा रखत हरिऔध एक तुमरीही आसा ॥७४॥

तुम से हम को नाहिं कहत हम सांची प्यारे।
जग में पापी अमित एक तू पापनि तारे॥
कुटिल कुकरमी सकै नाहिं हरिऔध गनाई।
पै सब को हित करत एक तूही जग साईं॥७५॥

दृष्टान्त कलिका

अर्थात् कुसुमदेव कृत संस्कृत दृष्टान्तशतक का भाषानुवाद।

दोहा।

एक संभु सुमिरन हरत, अन्तक जग को जोर।
प्रबल दवागिन देत है, ज्यों बुझाइ घनघोर॥१॥
साधुहिं होत प्रबीन है, सदगुन बरनन कांहिं।
नवचूतांकुर स्वाद को, पिक पटु जानन मांहिं॥२॥
दुर्जन दूखत है तुरत, सज्जन सदगुन कांहिं।
मलिन बनावत धूम ज्यों, सेत बसन छन मांहिं॥३॥
जैसो औगुन लखि परत, वैसो नर गुन नाहिं।
प्रगटत प्राय कलंक ससि, नहिं विकास निसि मांहिं॥४॥
नास करत नर को ब्यसन, केवल बिसद बिबेक।
समरथ निसितम हरन मैं, होत दिवापति एक॥५॥
बुध समुझत उपदेश को, मूरख समुझत नाहि।
गहत प्रसून सुगंध तिल, पै न गहत जौ ताहि॥६॥
चाहनवारो मंद रिपु, नयो रहत करि ब्याज।
पहिले नै पाछे हनत, गज सओज मृगराज॥७

बहुधा प्रगटत धीर की, गुन गरिमा चहुं पास।
दग्ध किये हूं अगर की, फैलत दिसन सुबास ॥८
लहत मनस्वी को हृदय, रोसहुं मैं न प्रमाद।
सचत अंगारन भस्म ते, पावत लोग प्रसाद ॥९
उत्तम सहत कलेस को, इतर सहत नहिं ताहि।
महासान घरसन सहत, मनिगन रजकन नाहिं ॥१०
स्वजातीय बैरी बिना, जय कबहूं नहिं होय।
बिना बज्र मनि मुकुतमनि, भेदि सकै नहिं कोय ॥११
सज्जन ही साधून के, गुनगन करत बिकास।
पवन प्रसून सुगंध को, दिसि दिसि करत प्रकास ॥१२॥
जितो करत लघुहित तिती, नहिं महान सों आस।
समरथ बारिधि होत नहिं, कूप बुझावत प्यास ॥१३
बीरतादि गुन पुरुख के, सील सहित छबि ठौर।
तियसोभा भूखन करत, जोबन मैं कछु और ॥१४
बहुधा साधुन सों लहत, जड़ता बस जड़ रंज।
उदय भये निसिनाथ के, सकुचत जल मैं कंज ॥१५
गुन सों प्यारो होत नर, कबौं रूप सों नाँहिं।
सुघर फूल बिन गंध को, देत न काहू कांहिं ॥१६
हित चाहनवारो सुहृद, कोउ काहू को होत।
खिलत कमल सकुचत कुमुद, रबि के भये उदोत ॥१७
का अचरज जो पिसुन जन, करत बड़न सों रोस।
अहि धारन द्वै जीह करि, निधि सों करत सदोस ॥१८
सम्पति मैं पर होत ढिग, बिपति स्वजन बिनु प्यार।

लसत सरोरुह मैं भ्रमर, सूखत उदक सिवार ॥१६॥
मलिन नीच अवमान ते, सम्पति रहत अदूर।
लसुन बसाये अंग मैं, पोतत सबै कपूर ॥२०॥
व्यसन अनन्तर होत सुख, थोरो कै अधिकाय।
खाय कसैलो रस अधिक, जल को स्वाद जनाय ॥२१॥
समुझत अन्तर गुनन को बुध मूरख समुझै न।
सरस मालती गंध को, जानत नाक न नैन ॥२२॥
अधिक बैस मैं होत है, नर की मति बलवान।
चन्दन तरु प्राचीन मैं, उपजत गंध महान ॥२३॥
मोहत बुध को आतमा, जतन कियेहूं चाह।
दौरत नव तृन बैल लखि, चलत सुनियमित राह ॥२४॥
बढ़त लोभ नर के हिये, अधिक धनागम मांहिं।
बहुधा तप रितु मैं बहत, अधिक सीत हिम नांहिं ॥२५॥
सहज गुनहु नर को बढ़त, साधुबाद को पाय।
काम सुरस के लेप ते, कंचन दुति अधिकाय ॥२६॥
जो सत की निन्दा करत, आपुहिं दूखत सोय।
परत ताहि के सीस रज, तजत गगन पै जोय ॥२७॥
संत सुभाव न आपनो, तजहिं कुसंगति पाइ।
कोकिल तजत न मंजु रुत, काकमण्डली जाइ ॥२८॥
सुख करकस चित होत खल, दुख मैं कोमल होय।
सतिल कठिन जनात है, नरम तपायो तोय ॥२६॥
भीत कियेहू दुष्ट जन, बहुधा रिस बस होत।
लहि सनेह अँखियन कलुख, छन मैं होत उदोत ॥३०॥

असुभ और सुभ करम फल, काल पाइ प्रगटंत।
सालि सरद ही में पकत, कबहुं न पकत बसंत ॥३१॥
भोगेच्छा उपभोग ते, भोगिन की न नसाय।
क्रम क्रम लौन अहार ते, प्यास बढ़त ही जाय ॥३२॥
दुर्लभहूं नीके सरत, स्वजातीय बल पाय।
कान समाये बारि को, बारि लेत बहिराय ॥३३॥
निरुपभोग जन्तून की, महि रुच्छता लखाय।
बिधि बातासिन को दई, जिमि द्वै जीह बनाय ॥३४॥
ऊर्जित सज्जन को निरखि, द्वेष करत बहु नीच।
लखि मयंक पूरन ग्रसत, राहु गगन के बीच ॥३५॥
किये बिना उद्योग कोउ, सम्पति पावत नांहिं।
कियो पान मथि छीरनिधि, सुरगन अमृत कांहिं ॥३६॥
दुख करकस सुख मैं नरम, साधुन चित दरसात।
कठिन जेठ कोमल चइत, होत तरुन को पात ॥३७॥
जन दुर्जनता को न कहुं, आकर कारन मान।
उपजि सुधानिधि ने हरत, कालकूट जन प्रान ॥३८॥
बुध संसीलन ते सुगुन, दोखहुं मैं मिलि जाय।
मथि अम्बुधि देवन लही, सुधा गरल को पाय ॥३९॥
आपत हू मैं परि तजत, निज सुभाव नहिं संत।
पावक परसि कपूर ते, कल सुबास प्रगटंत ॥४०॥
अवसि गुनिन के होत हैं, गुनीन अस जिय आस।
अनल दग्ध चन्दन भसम, नेक न रखत सुबास ॥४१॥
असत कालहुं मैं लहत, साधु प्रसंसा मान।

तबहुं चन्द सुन्दर लगत, ग्रसत राहु जब आन ॥४२॥
बिना परिच्छा तत्व नहिं, प्रगट करहिं सतलोग ।
खींचेही यह जानियत, सकट चलन के जोग ॥४३॥
लहि धन गरबित होत जड़, कबौं न बिनधन होय ।
जल पूरो गरजत जलद, नहिं गरजत बिन तोय ॥४४॥
कारज बस ह्वै जन करत, प्रीति सहित ब्यवहार ।
मेखपाल हित लोम के, पालत मेख सप्यार ॥४५॥
खल जीतत बुध जुगुत सों, निग्रह करिकै नांहिं ।
ढाहत खनि ढिग की पुहुमि, महारूख पल मांहिं ॥४६॥
दुख सुख मैं सम ह्वै रहहु, लखि जग मैं दुख लेस ।
तेल मले काटे रहत, जैसे थिर सिर केस ॥४७॥
खल दुर्जनता परि लहत, सज्जन सों जन मान ।
चढ़न मेरु स्रम सों पथिक, लहत सिखर पर त्रान ॥४८
आप अनोखी वस्तु को, नहिं बनाव सो काम ।
सान चढ़त कौने सुन्यो, मुकता रतन ललाम ॥४६॥
सोहत निरगुन नहिं कबौं, बिबुधमंडली मांहिं ।
तम मैं छबि दीपक लहत, रबि प्रकास मैं नाहिं ॥५०॥
पीछे बहु बाधा करहिं, नहिं बिपाच्छि समुहांहिं ।
हरन करत पै को लखत, आन्तर मल पल मांहिं ॥५१॥
दुर्ग देस मैं पैठि कै, लहत पराभव सूर ।
दलदल मैं फँसि दुरद हूं, दुख पावत भरपूर ॥५२॥
सनय सूरता देत जय, केवल देत न सोय ।
पथ्य होत बिख और सँग, मरन भखे यों होय ॥५३॥

बहु कोमल जन मिलि सकैं, एक सूर नहिं टारि।
जांहिं सौंह इक बाज के, बहु कपोतसुत हारि ॥५४॥
बिकत जाहि की आतमा, सब खोजत है वाहि।
सहसन दै गज लीजियत, कबौं केसरी नाहिं ॥५५॥
गुन अन्तर गुन को चहत, प्रगटन हित निज रूप।
बाल भाव बालकन को, तरुनाई न अनूप ॥५६॥
सुलभ पदारथ जगत में, होत न आदरनीय।
तजि अपनी तिय को चहत, सबै पराईतीय ॥५७॥
बसन संवारत मूढ़ जन, वेंचि आपनो गात।
निज तन भूखन और को, को पहिरावन जात ॥५८॥
छनिक बिनासी भोग सों, उत्तम लहत न प्यार।
तजि सुन्दर सरसिज कोऊ, चाहत नांहिं सिवार ॥५९॥
बरनि असंभव गुन हिये, पावत लाज प्रकास।
कर्निकार में गंध कहि, को न लहत उपहास ॥६०॥
दोखी धन के लोभ सों, होत नाम केहि नांहिं।
बधिक दूरही सों हनत, मास काज खग कांहिं ॥६१॥
करत समीपी सरस हिय, गुनिजन गुन परबेस।
होत पौनही में खिले, कमल गंध को लेस ॥६२॥
नर को निजहिय भाव लौं, परहिय भाव जनात।
टेढ़ो कुटिल कृपान में, प्रतिमा मुख दरसात ॥६३॥
दूख बेग बाधै अधम, नहिं उत्तम जन कांहिं।
तुरत सीत प्रविसत पगन, नैनन परसत नांहिं ॥६४॥
चिरथायी गुनवान कोउ, देवन हूं में है न।

श्रीवारो पूरो ससी, रहत एकही रैन ॥६५॥
उपजत जाते दोख कछु, ताही ते बिनसाय।
परे फफोले आग के, नसैं आगही पाय ॥६६॥
जाके हिय निहचै नहीं, भ्रमत आपही सोय।
बात चक्र परि पातही, इत उत घूरित होय ॥६७॥
कथा प्रबन्ध बँधेहुँ चित, कोउ कोउ तोख लहंत।
कोकिल ही कूकत फिरत, बगरयो निरखि बसंत ॥६८॥
बुधिबल जीवी बिबुध को, उपजत नहिं अभिमान।
दूजे को भूखन पहिरि, कोउ नहिं चलत उतान ॥६९॥
देत अधम सों मांगिबो, उत्तमजनहिं नवाय।
रतन कौस्तुभादिक लियो, हरि अबुंधि पै जाय ॥७०॥
बहु जन के सम श्रम किये, होत कोऊ फलवान।
सुधा पान मथि छीरनिधि, देवन कियो न आन ॥७१॥
गुन सों पूजित होत नर, नहिं कबहूं कुल पाय।
[illegible]त चन्द सिव सीस पै, रवि-हय थान कहाय ॥७२
दुखद, सुखद, नहिं, परदुखै, भोग लहै जो कोय।
पी लोहू पर को तुरत, जो कहुं पीड़ित होय ॥७३॥
कोउ अनचाहे अरथ को, चिर दिन चाहत नांहिं।
भूखन भूखित नहिं करत, चूड़ा निज तन कांहिं ॥७४॥
कटु भाखन सों हिय उठत, गूढ़ क्रोधहू जागि।
ज्वलत तोय कन के परे, ईंधन में की आगि ॥७५॥
ताको लोग न मानहीं, ढिग जो बसत महान।
नमत न पावनि गंग को, तीर रखत जो थान ॥७६॥

लखहिं आपने सम स्वजन, पर जानहिं गुनवान।
गोपन जान्यो गोप हरि, देवन ईस समान ॥७७॥
उत्तम पावत तोख हिय, पोखे अंगन कांहिं।
सिंचन कीने मूल के, तरुसमूह हरियाहिं ॥७८॥
ख्यात नरन में छवि लहत, गुनवानहिं सब ठाम।
सिर ग्रीवा पग बाहु में, मनि लागत अभिराम ॥७९॥
रहत नहीं चिरकाल लौं, बिपति सुजन के साथ।
तेजहीन कछु छन रहत, राहु ग्रसित निसिनाथ ॥८०॥
खल सुभाव अपनो तजत, कबौं पाइ भल साथ।
रबि की तीखन किरिनते, सृजत सुधा निसिनाथ ॥८१॥
साधु नीच दुख देत सम, क्रोध भये पर कांहिं।
दहत 'दारु' 'चन्दन' रखत, भेद दहन में नांहिं ॥८२॥
लहि सुठौर सोहत सबै, पाइ कुठौर न कोय।
दूखन अंजन अधर पै, भूखन अँखियन होय ॥८३॥
सहज बुरो वैसहिं रहत, कोउ विभूतिहू पाय।
गोबर में निवसत रमा, तऊ न मंजु लखाय ॥८४॥
पूजत गुन जन्तून के, नहिं केवलही जात।
फूटो भाजन फटिक को, कौड़िहु को न बिकात ॥८५॥
आवत जस उतसव फबत, तैसो फबत न जात।
जस सोहत ससि सांझ को, वैसो लगत न प्रात ॥८६॥
पराधीन जीवी जनहिं, गनत मनस्वी नांहिं।
बलि भोजी काकन कबौं, कोकिल नाहिं सिहांहिं ॥८७॥
आकसमिक धन लाभ ते, नर सन्तोख नसाय।

बरखाजल सरिता भरे, सेतु नास ह्वै जाय ॥८८॥
लसै सरग मैं आतमा, कबौं बसै महि आन।
होत मसानहुँ बाग औ, बागहुँ बनत मसान ॥८६॥
उच्च कोटि गत बस्तु जग, सुभ औ सुखकर होय।
प्रानिन की बाधा हरत, साफ किये जिमि तोय ॥६०॥
तोख लहत बुध मान सों, औ खल धन को पाय।
तूठत जय सों देवता, बलि सों भूत बलाय ॥६१॥
नासन मैं निज जाति के, प्रानिन चाव लखात।
बाज बिहंगनहीं हनत, करत न उरग निपात ॥६२॥
अपने मतलब सों जगत, पूजत हित सों नांहिं।
रखत दुधारू धेनु को, धरम सों न घर मांहिं ॥६३॥
महत तेज ऐसो लसत, जहँ अनोज दुरि जाहिं।
भये प्रकासित भानु के, उडुगन गगन बिलाहिं ॥६४॥
दानी कहुँ कोऊ रहत, घर घर जाचक जूह।
चिन्तामनि खोजन मिलत, पथ पथ रेनु समूह ॥६५॥
गुन अनुकूल गँभीरता, बस सुबस्तु जग कोय।
बेनु मधुर बाद्यन सुखद, एकै सत सुर होय ॥६६॥

सवैया।

ऐसो अहै जग मैं सुकृती कोऊ जो सबही सों समादर पावै। मान सजाति मैं सोऊ लहै गुनमान ह्वै जो मन को अपनावै॥ पै हरिऔध से क्रूरन मैं वा समादर बारि न बानि दिखावै। राम को नाम पढ़ै सुगना यह काक कपूत बृथा मुख बावै ॥६७॥

दोहा ।

दुखद घनहुँ पर के मिले, लहत सबै उर प्यार ।
मलयगंध तरुगन गहत, जद्यपि सहत कुठार ॥९८॥
काल पाइ बिधि बस सरस, भाव न लहत बिकास ।
मुक्तावारो घन कनहुँ, नसत कबहुँ परिबाँस ॥९९॥
अनुवादित हरिऔध कृत, कुसुमदेव सहुलास ।
यह कलिका दृष्टान्त की, कबि हिय लहै बिकास ॥१००॥

समस्यापूर्त्ति ।

समस्या—

" धौंसा की धुकार पै पुकार मरदाने की "

कवित्त ।

दौरि दौरि दिसन दरत दाप द्रोहिन को दल में दिखात पाँति दुरद दिवाने की । बार बार बैरिन को बेधत बगारि बान बीर गन बिरद बिचारि निज बाने की ॥ औध हरि आहव अपार अधिकानो आज ऐंठ आनि ऐंचत कबन्ध उमगाने की । कान सुनि कायर कितेक कूदि कटि जात धौंसा की धुकार पै पुकार मरदाने की ॥१॥

दूर करि दाप देव दानव दिगीसन को दाबि लेत दीनता दिगन्त दुरि जाने की । बड़े बड़े बीरन की बीरता बिगारि देत बैरिता बिदारि बहु बैरि बरकाने की ॥ हरि-औध तेहिन को तखब तोपि लेत ताब हरितन के तरुन तनकाने की । दरिदेत दुरद दिसान के दिमाग हूं को धौंसा की धुकार पै पुकार मरदाने की ॥२॥

जीत की धुजा है कि भुजा है पौनपूत की ।

कवित्त ।

सेनपन सज्जी कृत सेन से उतंग सोहै धीर नसि जात जाते कायर कपूत की । बीरता चढ़त अवलोकि चित्त बीरन के सूरता बढ़त तैसे सूरमा सपूत की ॥ हरिऔध बैरिगन हूं को ब्यूह बिललात मान मिटि जात ज्यों कुटेव

अवधून की। बीर ना जनात चिन्ति चित्त जऊ थकि जात जीत की धुजा है कि भुजा है पौनपूत की ॥३॥

बीरन की बीरता बिलोकत बिलाय जात सिगरी बड़ाई होत बात कहनूत की। जाकी उच्चता के लखे गगन खरो खिसात पीर होत छाती पाकरिपु पुरहूत की॥ हरिऔध जाको देखि दुरत दिगन्त दौरि द्रोहिन को दल दीनता दिखाइ दूत की। नृपगन नमित पगन भारतेस्वरी की जीत की धुजा है कि भुजा है पौनपूत की ॥४॥

"ग्रीखम प्रचंड मारतंड हनुमान भो"

कबित्त।

केहरि लौं दानव दरीन मैं दुरन लागे सीत भीत दानवी दरप को निदान भो। लागे दसकंठ कुंभकान कुञ्ज कुंभिलान जीव कुल लंक लोग हूं को कलकान भो॥ नाग-सुता सारिता सुखन लागी हरिऔध तापित सुरेस जीत सिखर समान भो। उदित उदंड उदयाचल सुबेल सैल ग्रीखम प्रचंड मारतंड हनुमान भो॥ ५॥

पावस पयोद नाद सिखिनि सिया के हेत कपिन चकोर ससि सरद समान भो। असुर अनीक किरखीन को हिमन्त हिम सिसिर समीर अमरारि तरु जान भो॥ बड़भागी बिदित बिभीखन मिलिन्द काहिं सरस बसन्तरितु सुमन प्रमान भो। बापी बारि बसुधा बिदित बीसबांह काज ग्रीखम प्रचंड मारतंड हनुमान भो॥६॥

जुरी जोम करिकै जमात दनुजातन की अमरेस आको जोहि लरजि अजान भो। जुटि जुटि जऊ राम जोधन जड़न लागीं तऊ हरिऔध ऐसो कौतुक भान भो ॥ जेते रहे जरन उड़न औ तपन लागे तृन तूल तोय ज्यों औ जकत जहान भो। अंगद अनलपुंज अनिल उदंड नील ग्रीखम प्रचंड मारतंड हनुमान भो ॥७॥

सज्जित करन हित अंजनी गगन गोद सरद सुधाकर के निसिप समान भो। गोनिधि गरब दसग्रीव के ग्रसन काज कठिन कुयोग अगुगलित गुमान भो ॥ हरिऔध उदित अकाल क्रूर केतु सम सबै लंक लोगन के हित कलकान भो। बीस बाँह बिकल बिहाल बन्द बारि काज ग्रीखम प्रचंड मारतंड हनुमान भो ॥८॥

"बाँसुरी बजावै है"

कवित्त।

बिबस बनाइ बारनादिक बिहंग हूं को वनचर बानरादि हूं को बहरावै है। बिटप औ बल्ली हूं बिमोहि बिलमावै बारि बहत बयार हूं की गति बिरुझावै है। हरिऔध बूझि देखे बैगुन बिलोकै कहा बावरी जो ब्रजबनितान को बनावै है। बिबुध बरूथ बिबुधेस बिधि हूं को बेधि बीर बन माली बन बाँसुरी बजावै है ॥९॥

" बीजुरी अँधेरे में "

कवित्त।

कल जलकेलि जमुना में रचे कान्ह जू के करि जुवतीन

की जैमाति निज घेरे में। मोहन के अंक सों छबीली राधिका को छूटि डूबत बिलोक्यों बारि वा दिन सबेरे में॥ हरिऔध ताकी एक अजब अनूठी आज उपमा बसी है ऐसी आनि उर मेरे में। गोद सों गरबवारे बारिद हितू के गिरि गरक गई है मनों बीजुरी अँधेरे में॥ १०॥

" उँज्यारी चली जाति है "

कबित्त।

दूर परि कैसहूं प्रभा की अँधियारी माँहिं छन छन छोभ सों छबीली पछताति है। बार बार बारि भरे आँखिन बिलोकि ब्योम प्रीतम बियोग सों बिपुल बिलखाति है॥ हरिऔध औचकही हेरि हरि आनन को आसा सों मयंक मिलिबे की उमगाति है। कटि में नकल पटपीत की प्रभा है मंजु प्यारे ब्रजचन्द पै उँज्यारी चली जाति है॥ ११॥

" भानुतनया पै बृखभानुतनया चली "

कबित्त।

गारत गमन सों गुमान गजराजहू को जघन बिगारत बडाई बर कदली। आनन प्रभा को पुंज दिगन बगारत सुबास तन प्रगट पसारत गली गली॥ हरिऔध किन्नरीन हू को मद टारत निवारत परी हूं प्रभा स्यामरंग में रली। भोरही लै गोपतनया की भीर भावभरी भानुतनया पै बृखभानु तनया चली ॥१२॥

मंद मंद वैसही हँसत नभचंद रह्यो चटकीली चांदनी हूं तनक नहीं हली॥ डोले नाँहिं नेक हूं असोक करुना रसाल खोलि

मुख हूं नास की नीकी कंज की कली । हरिऔध काहू की न दाही दुख मैं बिलोकि प्यारे बिना बिकल बिहाय केलि की थली ॥ सोकसनी गोपतनया समेत सीलवारी भानुतनया पै बृखभानुतनया चली ॥ १३ ॥

"कीरति सुता की हैं"

कबित्त ।

रंभासी जुहारें मैनकासी खरी चौर ढारें गंगासी गिरासी परिचारिका सदा की हैं । रतीसी तिलोतमासी सचीसी सराहैं ठाढी सेविका कलिन्दजासी किती ललना की हैं ॥ हरिऔध कल किन्नरीनसी अरी ही रहैं की समासी देवमासी खासी छबि छाकी हैं । दमासी उमासी गरिमासी सुखमासी कौलमासी परमासी दासी कीरति सुता की हैं ॥१४॥

"हिये में प्रानप्यारी के"

कबित्त ।

बीति गये बरस कितेकन बिदेस आये बस कछु ऐसे परे बिधि अधिकारी के । सबै भौन जान के बिचारे न्योंत बार बार बिगरे बिगारे या उदर अपकारी के ॥ हरिऔध आवत ही गृह मैं नवेली नारिफंद परि गये या बियोग अबिचारी के । और कहा कहौं नेक हँसि बतरान हूं की हाय रही हौसही हिये में प्रानप्यारी के ॥१५॥

"आई जह्नुबालिका"

कबित्त ।

सजि सित बसन सुहावने सलोने अंग परम पुनीत

प्रीति रीति प्रतिपालिका। भूखित है हीरक बिमंडित बिभूखन सों चलत निराली चाल मोहत मरालिका ॥ हरि-औध गोरे गोरे सुन्दर गरे में डारि सेत सेत सरस प्रसूनन की मालिका। छवि सरसावत सुनावत रसीले तान मंजु रासमंडल में आई जह्नुबालिका ॥१६॥

"अबला है कौन"

कवित्त।

नेक ही नजर बदले पै ना परत कल कौन कहै ताको होत हाल फिरके पै जौन। नाक में रहत दम हुकुम न मारे सदा आनन बिलोकत ही होत दिन रैन गौन॥ हरिऔध एतेहूं पै बचत न क्यों हूं प्रान मुख ते कढ़त याते नहिं रहि जात मौन। मरद बिचारो जाते हारो सो रहत होस ऐसे सबला को राख्यो नाम अबला है कौन ॥१७॥

"एककल है"

कवित्त।

पौन लौं चलत कोऊ कैसे कै बखानै गौन जंत्र है कि तंत्र है कि आन कोऊ छल है। धूमिल दिसान को करत धूम धारन सों धूम ही मैं कोऊ करामात कैधों बल है॥ एहो हरिऔध बारीकी ही में अरुझि जात बूझि ना सकत होत बुधि हू बिफल है। अमित प्रभाकी छबि छाकी यह काकी रेल किती उपमाकी जाकी बाँकी एक कल है ॥ १८ ॥

"देवपादप उखरिगो"

कबित्त ।

मुनिन सरोज को दिनेस अथयो अकाल गुनिन कुमोद चन्द राहुमुख परिगो । हरिऔध ज्ञानिन को चिन्तामनि चूर भयो मानिन प्रदीपहूं को तेज सब हरिगो ॥ पारस हेराइ गयो हीन जन हाथन को भारती को प्यारो एकलौतो तात मरिगो । सागर सुखानो आज संतजन मीनन को दीनन को हाय देवपादप उखरि गो ॥१६॥

" तीरथ के तीर काहू तीर मारियत है "

कबित्त ।

कहा दुख पावै पछतावै अकुलावै महा नैनन सों बारि कौन काज ढारियत है । सौन से सपूत के नसे ते कौन राखै प्रान याते ऐसी इन की दसा निहारियत है ॥ हरि-औध भली भई जो पै अंध दई साप पापिन के ऐसेही प्रमाद टारियत है । तू तो इतना हूँ ना बिचारयो मन एरे मूढ़ तीरथ के तीर काहू तीर मारियत है ॥२०॥

'किम्मत कहां रही'

कबित्त ।

सौहैं पाइ सेर हूं को संकित न होवै सूर साहस के आगे नाहिं काहू की सुनै कही । कठिन कठोर काजही को महिमंडल में साहसी सवाँरि साँची कीरति सदा लही ॥ हरिऔध धनाधीस हूं की धाक मानें नाहिं बिफल न होत बीरता की बानि जो गही । हिम्मत ही वारे मान हिम्मत किये पै लहैं हिम्मत गये पै काकी किम्मत कहां रही ॥२१॥

'एकही रजाई में'

कबित्त।

चारि सुत मेरे खरे काँपत करेजो चांपि बालिका हूं सीसी करि कहै मरी माई में। सात टूक सारी मांहिं सिसकै हमारी नारि प्रान की परी है पौन पूस की खराई में। हरिऔध याहू पै भये हैं उपबास चार मिलत अकाल सों न कौड़ि हूं कमाई में। मोसे मंदभागिन को मौत हूं न आई राम कैसे कटै रात फटी एकही रजाई में ॥२२॥

"सुजस जगो रहै"

कबित्त।

प्रथित पुरातन पथन में प्रतीत राखै परउपकार ही में परम पगो रहै। नाखै लोभ ललना के लोयन ललाम ; को लोकहित साधन में ललकि लगो रहै॥ हरिऔध का राखै हिय की अकाम ताते सकल सकाम ताते भभरि भगो रहै। सीतल ह्वै पावै मोद हीतल अरीन हू को जाते ज- तीतल में सुजस जगो रहै॥ २३॥

"बेटी वृखभान की"

कबित्त।

गैल रोकि ठाढे रहो ऐलफैल बातें कहो मैल मन गहो जो उचारै कोऊ कान की। गागरी न फोरो ताकि ताकि काकरी न मारो खोर सांकरीन में बिगारो पति आन की॥ हरिऔध मानो कै न मानो पै बतानो परै आनन पै आनो परै बतिया प्रमान की। काहे को अरूझो मो सों बार बार

जूझो बलि एतऊ तो बूझो राधे बेटी बृखभान की ॥२४॥

"तिरछे चितै गई"।

कवित्त।

प्रानप्यारी हियरो हरनवारी जोमवारी अति छबि-वारी मोहि मन को कितै गई। मंद मृदुबैनवारी कमल से नैनवारी उरज उतंगवारी करि दुचितै गई॥ गज से गमन-वारी कोमल पगनवारी मोद सों हमारे हरिऔधहिं रितै गई। सानवारी मानवारी गरब गुमानवारी मंजु मुसुकान-वारी तिरछे चितै गई॥ २५॥

"सांच को आंच कहां लगती है"

सवैया।

जानती हैं हम बातैं सबै हम को कहा तू छल सों ठगती है। तेरी कुटेव परी यह कौन धों जो उस वासन मैं पगती है॥ जानि लै बावरी जीमैं अजौं हरिऔध कहा रिस कै जगती है। कोऊ किती बकवाद करै पर सांच को आंच कहां लगती है॥२६॥

होत है हानि जऊ जुन के बिना पै नहीं सो मन को ठगती है। काजहूं नांहिं सधै कबहूं मति पै एहि दूख सों ना डगती है॥ जानत है हरिऔध भली बिधि औ सुधि या सुख सों पगती है। कोऊ किती ततबीर करो पर सांच को आंच कहां लगती है॥२७॥

काहें इतो अकुलात अजान है क्यों मति तेरी महा जकती है। धीरज क्यों न धरै हियमें अरु काहें नहीं सुधि

हूं थमती है ॥ जानि लै जीमैं बिचारि कहै हरिऔध कहा नर की गनती है। देवहूं क्यों न उपाव करैं पर सांच को आंच कहां लगती है ॥२८॥

" चंचल नारि छिपै न छिपाये "

सवैया।

पूजत है पति मानि सती सुख जेठ लहै हमरे गुन गाये। सासु कहै बड़भागिनी मोहि रहै ननदी हम को पतियाये ॥ मोको न चैन परै हरिऔध बिना पर के पति को उरलाये। कौन कहै इन बातन बावरी चंचल नारि छिपै न छिपाये ॥२६॥

आइ कै द्वार पै ठाढ़ी रहै निज ऊंचे उरोजन को उच-काये। बातैं करै दृग दोऊ नचाय रहै सिर ओढ़नी को खसकाये ॥ भौहें मरोरि लखै हरिऔध हंसैं सब सों कहै पीउ पराये। अंचल खोलि चलै पथ ऐंठत चंचल नारि छिपै न छिपाये ॥३०॥

" रतिरीति मैं प्रीति घटावती हो "

सवैया।

हँसि कै छतियान सों लागि प्रिये नहिं नैन सों नैन मिलावती हो। कुच तोपि के हाथन सों अपनो मुख चुम्मन को तरसावती हो ॥ हरिऔध कहा तकसीर भई तुम सोऊ नहीं बतरावती हो। अपनो मुख ढांकि क्यों अंचल सों रतिरीति मैं प्रीति घटावती हो ॥३१॥

धन हो नित नेम सों नेह बढ़ाइ बिराग हमैं सिखरा-

वती हो। कहि नीके प्रसंग पुरानन के हिय ज्ञान की जोति जगावती हो ॥ तुमसी तिया भाग नहीं जग पैये नहीं हरिऔधै भुलावती हौ। हरिनाम को भाव बताइ हमैं रति-रीति में प्रीति घटावती हौ ॥३२॥

"आरतबानी"

सवैया।

कैसी भई है कहा है भयो बिगरयो मन क्यों तजि प्रीत पुरानी। है सिखयो यह रीति नई किन कौने दई यह मंत्र सयानी ॥ कैसो करेजो भयो सजनी हरिऔध कहा हिय में हठ ठानी। तू इत मौन ह्वै बैठी भटू उत लाल उचारत आरतबानी ॥ ३३ ॥

क्यों इतनो बढ़ि बातें करै हम सों चलिहै न कबौं मन-मानी। जानती हैं हम तेरे सुभायन औ तिन की गतिहूं सबै जानी ॥ काहें घनो बकबाद करै हरिऔध बनै सब जानि अयानी। ऐसही काज परे पर बावरी लाल उचारत आरतबानी ॥ ३४ ॥

रूप की रासि रची बिधना हमैं देखि सची हिय माहिं लजानी। चैन मयी मनमोहनी मूरति हेरि रतीहूं रहै चक-रानी ॥ नेकही भौंह मरोरि लखै हरिऔध लखै कस भो मनमानी। घायल से भये घूमत हैं खग औ मृग भाखत आरतबानी ॥ ३५ ॥

आनन मेरो बिलोकि भयो सकलंक ससी मनमानि गलानी। दंत को देखि दरार भयो हिय दारिम के अतिही

दुख मानी ॥ हेरि कै नैनन को हरिऔध जू मीन को जूह दुरयो तकि पानी । कंठ की कूक सुनेही कराहत कोकिल हू कहि आरत बानी ॥ ३६ ॥

वाहवा ऐसही चाहिये लालन खूब करी तुम प्रीति गलानी । का कहनो है बड़ो हौ कृपानिधि है यह रावरी रीति सुहानी ॥ धन्न हो धन्न हो वारियां लालन हौं हरि- औध बड़े सुखदानी । रावरो ऐसो सुप्रीतम पाइ वृथा हम भाखत आरत बानी ॥३७॥

भूखन भौंन भँडार सबै हरिऔध कहै तिमि सेज सुहानी । नात पिता सुत मीत मिलापिन औ जग में जितने हित मानी ॥ छोरि सबै छन में चलि जात है प्रान तबौं नहिं चेतत प्रानी । रोअत नारि खरी घर में अरु भ्रात उचारत आरत बानी ॥ ३८ ॥

सूरज की गरमी बिनसी कब सीतलता कब चन्द नसानी । चन्दन भो कब गंध बिना लतिका कब वायु बिना लहरानी ॥ जो परिबानि सुभाव सों जाहि की सो हरिऔध सदा ठहरानी । सूर भज्यो रन को कब छोरि कै बीर कही कब आरत बानी ॥३९॥

है यह रीति सदा की उचारत हैं सिगरे जग के सत प्रानी । देख्यो पुरान अठारह मैं हम ऐसी बिचित्र अनेक कहानी ॥ है सिगरो इतिहास प्रमान मैं त्यों हरिऔध कहैं सब ज्ञानी । आपने कारज के अटके सिगरो जग भाखत आरत बानी ॥४०॥

जोई चहै सो करै गहि तेह को मानै सुरेसहूं की नहिं कानी। आपने पौरुख आगे गनै तिनका सम देवन की रजधानी॥ नेक करै परवाह न काहु की त्यों हरिऔध रहै अति मानी। भीर परेहूं न बीर कबौं मुख आपने भाखत आरतबानी॥४१॥

दाँत बड़े बड़े टेढ़े घने मुख कन्दरा लौं पसर्‌यो भयदानी। रोम खड़े तन नाक बड़ी दृग लाल भयावने काल निसानी॥ कृश्न को रूप कराल महा हरिऔध कहै मन मैं अनुमानी। देखत ही भभरे सबै भूपति कादर लौं कहि आरतबानी॥४२॥

थूक खखार सों न्हात सदा पहिरै चमड़ो दुरगंध निसानी। भूखन धारन हाड़न को तनखून की कीच रहै लपटानी॥ औधहरी कहै लोक मैं पाप कमाइ परै जब रौरव प्रानी। पीवत मूत सड़ो मल खात पड़ो कफ भाखत आरत बानी॥४३॥

भाय सों भेंटत धाय कबौं कबहूं गहि मात रहै बिलखानी। बाप की गोद गिरै कबहूं तलफै कबहूं ढिग जाय चचानी॥ आपने गौन को जानि तिया हरिऔध कहै मन मैं दुख मानी। भौन मैं जाय कबौं बिलखात कबौं कहि रोवत आरतबानी॥४४॥

ताकी खुसामद मैं चित देत है जो सब भांति अहै दुखदानी। दीन ह्वै बातैं सहै सब की मन आपने नेकौ धरै न गलानी॥ जोहत है मुख नीचन को हरिऔध नसा-

वत है पतपानी । आपने कारज के अटके सिगरो जग भाखत आरतबानी ॥४५॥

घास को खाइकै दूध स्रवैं अरु तात जनैं जग के सुख-दानी । सेवन मूये करैं पग को तऊ भारत मोहि न होत गलानी । लीजे बचाय भनै हरिऔध दया करिकै विकटो-रिया रानी । गाय गरीबिनी के मुख सों यह दीनता की सुनि आरतबानी ॥४६॥

है गुन आगरी दूख सहै सुघरी सब भांति ह्वै नाँहिं अघानी । है थल याको मिल्यो उरदू कहँ याहु पै होत महा मनमानी ॥ मानि कही हरिऔध की यापै दयाकरिये विकटोरिया रानी । कैसहू नांहिं सुनी अब जात है नागरी की अति आरतबानी ॥४७॥

कोप कै लै कर में करवाल कराल कढ़ी जब डाँटि भवानी । सुम्भ हनी रिसकै तबहीं इकसै हथी तेजभरी बिखसानी ॥ ताहि निपाति हन्यो गिरिनन्दिनी बान अनेक महा धनु तानी । जाहि लगे दनुजेस जक्यो अरु सैन भजी कहि आरतबानी ॥४८॥

कोऊ कटै पुनि दौरि अरै कोऊ जूझि परै बढ़िकै रिस ठानी । घायल ह्वै कोऊ घूमत है कोऊ मातो फिरै रन के मद सानी ॥ औधहरी कहै कोऊ बकै बृथा, कोऊ तकै अरि को धनुतानी । कोऊ लरै तरु लौं पग रोपि कै कोऊ परै कहि आरतबानी ॥४९॥

रूस के पातन को रँग औरै भयो अरु सोंक पगै

सब मानी। पंखी भये सिगरे अति बावरे खिन्न पसूंहू भये दुख मानी ॥ ब्योम में बन्द भयो रथ चंद को औ हरिऔध रुक्यो नदपानी। पौनहूं को पथ भूलि गयो सुनि राधिका की अति आरतबानी ॥५०॥

"अँसुआन सों भींज्यो लिलार को टीको"

सवैया।

तोहि कहा है भयो जो कहै हरिऔध लौं बावरी बैन अठीको। मोसी सती है भला कब चाहि है प्रानपिआरो कोऊ तरुनी को ॥ जीह ते तेरे कढ़ै अस बैन क्यों याही अचंभो अहै मम जी को। कोऊ न भाखि है भूलि कबौं अँसुआन सों भींज्यो लिलार को टीको ॥५१॥

तू कहै मैं न कहौंगी कबौं नहिं मोहि बिसास है वा जुवती को। साँचहूं है न भली वह बावरी पै न तू जानती है करनी को ॥ वाको पतिव्रत के रँग में रँगिबो हरिऔध न भावत जी को। आजु लौं नाहिं सुन्यो कबहूं अँसुआन सों भींज्यो लिलार को टीको ॥५२॥

ढूंढ़ि कै कुंज में त्यों कलकूल पै नाहिं लह्यो जब प्रानपती को। रोदन ऐसो कियो बृखभानुजा दूख भो जाते सबै जगती को ॥ जा समै सीस उठाइ लख्यो हरिऔध कहै दुख मोइ ससी को। सोक पगे रजनी पति के अँसुआन सों भींज्यो लिलार को टीको ॥५३॥

तू गुन आगरी है सजनी त्यों सबै कछु जानती है जगती को। याते चहै सो कहै सब सोहि है सांच असांच

बुरो अरु नीको ॥ मैं तो यही कहिहौं हरिऔध सों ओरि कै संक सबै सबही को। आंख सों देखी न कान सुनी अँसुआन सों भींज्यो लिलार को टीको ॥५४॥

गात के सेद समूह सों हौं सुन्यो भींज्यो सदा पट औ तन नीको। त्यों सुन्यो बार अनेकन स्रोन सों भींज्यो जहान मैं बीर ब्रती को ॥ नैन के नीरहूं सों हरिऔध सुन्यो हम भींज्यो हियो तरुनी को। पै सुन्यो आज लौं नांहिं कबौं अँसुआन सों भींज्यो लिलार को टीको ॥५५॥

" सिर ओढ़नी बैंजनी पैंजनी पायन "

सवैया।

पान की पीक लसै अधरान कपोलन की छबिहूं कहि जायन। हार विराजत है वर हीय पै श्रीफल हूं कुच सों अधिकायन ॥ पै हरिऔध जू सोहत हैं यह चार न जानत हौं केहि भायन। अंजन नैन मिसी मुख मैं सिर ओढ़नी बैंजनी पैंजनी पायन ॥५६॥

मैं बतरावती हौं मनमोहन कजित क्यों घने बैठि उपायन। जाइ मिलो दुख दूर बहाइ कै वा मनमोहनी सों बढ़ि जायन ॥ है भलो औसर मानिहुँ साँच उठो हरिऔध तजो सब चायन। हौं अबै जात लखी ब्रज मैं सिर ओढ़नी बैंजनी पैंजनी पायन ॥५७॥

रूप की रासि कै कामिनी काम की इन्दुकला कै सची ठकुरायन। मैनका मानभरी कै तिलोतमा संभु-प्रिया किधौं तीय नरायन ॥ जानी न जात अहो हरिऔध

जऊ करि सोचत कोटि उपायन। आवति है यह कौन चली सिर ओढ़नी बैंजनी पैंजनी पायन ॥५८॥

मैं सब भांति बिगारि दई अपने किये को कछू होत उपायन। ऐसो अनादर पाइके री सखी कौन अहै जो इतो अनखायन॥ रूसि रह्यो हरिऔध सों बालम हाय कहा कहिये कहिजायन। कौन बनाइहै री सजनी सिर ओढ़नी बैंजनी पैंजनी पायन ॥५९॥

"कौन को प्यारी लगै न दिवारी"

सवैया।

तेल भयो महँगो घर में कोऊ बारि सकै नहिं दीपक चारी। गाँठ में दामहू नाहिं रह्यो करिये तिवहार की जो कछु त्यारी॥ भौन गिरे परे तो हरिऔधजू आपने हाथन लेत संवारी। बात रही अब तो कहिबेहिकी कौन को प्यारी लगै न दिवारी ॥६०॥

दीपक की अवली दुख देति है दीह दुखाइके हीय दुखारी। भावत ना छन भौन बनाइबो बानसी लागत बोल जुआरी॥ प्यारे बिदेस बसै हरिऔधजू फीकी लगै सब सौंज तयारी। जानी न जात है कौने कही यह कौन को प्यारी लगै न दिवारी ॥६१॥

स्वच्छ कै बीथी गलीन दुआरन देत गिरे परे भौन सँवारी। नीकी सजाइकै हाट बजार को लेती प्रदर्सनी की छबि धारी॥ दीपक की अवलीन प्रकासि कुहू को

बनावति रैन उज्यारी । ह्वै गुनवारी इती हरिऔध जू कौन को प्यारी लगै न दिवारी ॥६२॥

नीकी लगै लगी दीपकपाँति भयो हियरो सब भांति सुखारी । दूरभयो मन को सिगरो दुख लागी सुहावन बनाव तयारी । आइगये हरिऔध बिदेस सों कीनो घनों जगदीस मयारी । तेरी कही अब सांची भई सखी कौन को प्यारी लगै न दिवारी ॥६३॥

ह्वै गयो है हियरो कछु ऐसही जाते न भावत है कछु त्यारी । का अब आस है वा हरिऔध सों जो नित राखत और सों यारी ॥ काहें बकै किन मौन गहै नहिं नीकी लगै बकबाद बृथारी । जानती हैं हमहूं यह बावरी कौन को प्यारी लगै न दिवारी ॥६४॥

" मन तो मृग की सी छलांगै भरै "

सवैया ।

बेलमाइबे को बहु भांति सों गाइ बजाइ जऊ अनुरागैं करै । हिय मोह बढ़ाइबे को सजनी लहि दांव अनेक सँवागै धरै ॥ तऊ कैसे मिलौ कपटी हरिऔध सों कैसहूं ना हिय दागैं हरै । लखि आवत ब्याध लौं दूरहि ते मन तो मृग की सी छलांगै भरै ॥६५॥

जऊ पंथ निकास के केते अहैं तऊ एकऊ ना लखि नैन परै । सुधि आपनी भूलति है सिगरी निज चालहूं को सब मान हरै ॥ हरिऔध कहा कहिये यह आपने हाथन आपनी हानि करै । परि केहरि कान्ह के सौंहैं अरी मनुआँ मृग की सी छलांगै भरै ॥६६॥

" हिमन्त मैं कंत गरेलागि सोवै "

सवैया।

मोसों कहा बकबाद करै हम सों कहा आपने भावन गोवै। मैं हरिऔध समीप न जाइहों तू उन के हित कैसहूं रोवै॥ ऐसोई दाह बढ़ी जो अहै तो कहा इत बैठी निसा सब खोवै। मो पै दया करि तूही न जाइ हिमंत मैं कंत गरेलागि सोवै ॥६७॥

तू सदा रूसी रहै कबहूं हंसि कै मुख आपने पी को न जोवै। कौन भलो कहिहै इन चालन क्यों मरजाद तू आपनो खोवै॥ सीसी करै हरिऔध परो उत सेज पै तू इत मान सँजोवै। कैसो करेजो अहै तव जो न हिमन्त मैं कंत गरेलगि सोवै ॥६८॥

" जिय सूधी चितौन की साधै रही "

सवैया।

दुख देत हौ क्यों तुम ह्वै के दयाल न जात कछू यह बातैं कही। तुमरी अहै बानि सनेह की पै हरिऔध कहौं किमि मानैं सही॥ उर लाय लै ऐरे मया करि कै अब तो हम से सहिजाते नही। तरसी हौं सदा हँसि बोलन को जिय सूधी चितौन की साधै रही ॥६९॥

मिलिबे हित नेह बढ़ाइकै जाइ अनादर सों नित बाधै लही। हमरी हितवारी सुवानिहूं को सब सों हरि-औध उपाधै कही॥ सखी कैसे न प्रान बियोगी बनैं दुख क्यों हमरो हिय दाधै नहीं। दृग फेरे रहै पिय मोसो सदा

जिय सूधी चितौन की साधे रही॥ ७०॥

हम खीझि जऊ हित बानी तजी उन की तऊ प्रीति अगाधे लही। कब हूं रिस मान्यो न मोसों भट्ट हम कीनो जऊ अपराधे सही॥ हरिऔध सदा सुख मोको दियो गुरु बातन हूं ना असाधे कही। अरी तू कहै मैं ना कहौंगी कबौं जिय सूधी चितौन की साधे रही ॥७१॥

"चिता पर पौढ़न के दिन आये"

सबैया।

मैं कहौं सांच मया करि मानि लै लाभ कहा छल सों बतराये। हैं हरिऔध सदा को लबार घनो दुख ताको अहै पतिआये॥ बृद्ध भई पै न बुद्धि अहै उन बातन में बहु तोहि भुलाये। झूठ न मोसों कहै अब तेरे चिता पर पौढ़न के दिन आये ॥७२॥

चाभि गये तुमरे पुरखान को तोहु को डारत हैं अब खाये। का भयो जो हम बृद्ध भये अबहीं मरिहैं बहु काल बिताये॥ ना डरिहौ लरि जैहौं तुरन्त सुनो हरिऔध कहौं समझाये। जो कबहूं कहिहै यह मोसों चिता पर पौढ़न के दिन आये ॥७३॥

"अँखियान निहारी"

सबैया।

प्यारी कहा कहिये दुख आपनो आइ बिदेस परे हम हारी। ना कबहूं अब देखि परे तुमरी मुसकानि इतै छबि वारी॥ छूटि बिनोद गयो सिगरो हरिऔध भयो सब भांति

दुखारी। सालती हैं अजहूं हिय में अँसुआन भरी अँखि-यान तिहारी॥ ७४॥

केसहूं मोहिं न भूलत है सो पयानसमै को बिसूरिबो भारी। होत है दूख घनों हिय में तुमरी गति याद परे जब प्यारी॥ बावरो सो हरिऔध भयो वह क्यों बिसरै नटि जान अगारी। सालती हैं अजहूं हिय में अँसुआन भरी आँखियान तिहारी॥७५॥

" सार यहै उपकार तजैना "

सवैया।

छार ह्वै जाय बिचार सबै तबहूं अपकार को साज सजैना। पार लगै कै डुबै मँझधार में यार को नाव पै छोरि भजैना॥ भार परै कै सुतार परै हरिऔध उबार की बार लजैना। प्यार करै कै अप्यार करै कोऊ सार यहै उप-कार तजैना॥ ७६॥

सूर भयो तो कहा रनभूमि में जो लखि सामुहें बीर गजैना। है कहा पंडित होइबे को फल जो जदुनाथ को जानि भजैना॥ लाभ कहा है नरेस भये गुनमान को जो हरिऔध जजैना। का भयो ज्ञानी भये जो न जानत सार यहै उपकार तजैना॥ ७७॥

क्यों सिवि आपने गात को आमिख देत सचान को संकित ह्वै ना। जानि कहा निज अस्थि को देत दधीच सचीपति को भरि नैना॥ रन्ति क्यों जाँचक को हरिऔध

जू भोजन देत छुधा निज ख्वैना। होत न ऐसो बिचार जो हीय मैं सार यहै उपकार तजैना ॥ ७८ ॥

काँपत है अजहूं हियरो सरदी छन छोरि कै दूर भजैना। प्यारो बिदेस बसै कबहूं उन को इत आइबो भूलि सजैना ॥ याहु पै लागि हिमन्त बयार सतावत है हरिऔध लजैना। जानत पौन न जानत है अरी सार यहै उपकार तजैना ॥ ७६ ॥

साँझही सों नभजोति पसारिकै दाह बढ़ावत संक करैना। प्रीतम के मुख चंद को ध्यान दिवाइ नसावत है सब चैना ॥ भाखत याते बनै हरिऔधजू मोसों जथारथ ही यह बैना। है द्विजराज पै जानत है नहीं सार यहै उपकार तजैना ॥ ८० ॥

लूटि कै खाय सदा धन और को झूठेही ईस के संक रखैना। होत जो काज लखै कहुँ काहु को दौरि बिगारिबे मांहिं दबैना ॥ खूब जो माल मिलै हरिऔध तो काटत सीसहूं के बिचलैना। मूरख मानै महा तेहि जो कहै सार यहै उपकार तजैना ॥ ८१ ॥

मैं यह जानत नीके सदा अरी भाग लिखी कोऊ मेटि सकैना। वा कपटी हरिऔध सों आसरो भूलि कबौं हित प्यार को हैना ॥ जो हियरो उन को अजहूं अरी मेरो कलेस बिचारि द्रवैना। मौन गहै फिर लाभ कहा कहै सार यहै उपकार तजैना ॥ ८२ ॥

औसर आवंत हाथ सदा नहीं क्योंहूं बिना भये काज

रहैना । केवल भू जसही रहि जात है अन्त समै कछु साथ चलैना ॥ औधहरी हैं असार धनादिक गातहूं को परमान अहैना । याते सदा यह जानत ही रहै सार यहै उपकार तजैना ॥८३॥

"बालपने को"

सवैया ।

नेकहूं मोको न लाज अहै इत कैसऊ औघट ठान ठने को । भूलि कै राखत ध्यान नहीं अपने हिय मैं बिगरै औ बने को ॥ लोनो मनोहर मैनमयी हरिऔध सरूप सुगंध सनेको । बीर बताय दै क्यों मिलि है हमरो वह भावतो बालपने को ॥८४॥

"बार बराबर"

सवैया ।

मोहन ब्योंत बनाइ घने उत लाई बधू तिहुं लोक उजागर । जानी न जात कहा इत बैठि रहै तुम है सबही गुन आगर ॥ बेग उठो हरिऔध बलाय ल्यों बूझि बिचारि चहौ कत आदर। बीर की सौं बिगरैगी बनी सबै बार करो जिन बार बराबर ॥८५॥

"गुरदेव रुपैया"

सवैया ।

सीलको नाम सुने अकुलात सनेह न मानत लोग लुगैया। धर्म्म सों राखत काम नहीं उपकार जनात घनो दुख दैया ॥ दीन की पीर न होत हिये पहिचानत ना कोऊ

भूलि सभैया। जानि परी हरिऔध हमैं अब तो सब को गुरदेव रुपैया ॥८६॥

"करिये कबिता की"

सवैया।

चाहत हिन्दी गरीबिनी को हित राखत लाज गई प्रतिभा की। पूरत आस गुनी हरिऔध की नासत बानि बुरी जनता की॥ कोऊ सपूत या भारत मैं खरो बांह गहै कर सों करुना की। आँसू बहाइ गहे हिय भाखत उन्नति क्यों करिये कबिता की॥८७॥

खड़ी बोली को सवैया।

जो कुछ भी तुम को नहीं प्रीति है हिन्दी गरीबिनी वो सुखदा की। प्रेम तुमारा नहीं जब है अपने कुल गोत की रीति मैं बाकी॥ सूझती है हर बात में आप को जो हरिऔध अजीब चलाकी। क्या हम से फिर पूछते हो तुम उन्नति कैसे करैं कबिता की॥८८॥

"गौर गिरी अरधंग सों छूटि कै"

सवैया।

कै घन सों बिछुरी चपला कै छुटी कुसुमायुध सों रति जूटि कै। चन्द सों चन्दकला कै खसी कै अरूंधती भू नभ सों परि टूटि कै॥ कै हरिऔध लुटी बृखभानुजा कुंजन मोहन संग सों फूटि कै। कै हरिहीन परी कमला किधौं गौर गिरी अरधंग सों छूटि कै॥८६॥

डार किती सुरपादप की गिरी देवदमामों गिरयो

दिवि फूटि कै। सृंग गिरे कनकाचल के नभ सों बहु तारे गिरे महि टूटि कै॥ भंग समै धनु संकर के हरिऔध कहा करि कै यह भू टिकै। अंकम सों हरि के कमला गिरी गौर गिरी अरधंग सों छूटि कै ॥६०॥

आब लुनाई अनूपता आनन राधिका मैं बिधना भरी कूटि कै। मंजुता ओप मनोहरता दई पूनो ससी सुखमा सब लूटि कै॥ औरो करी हरिऔध किती निपुनाई सबै जग की छबि घूटि कै। सिंधु मैं ताको बिलोकि रमा गिरी गौर गिरी अरधंग सों छूटि कै ॥६१॥

तू कहै क्यों बिछुरी हरिऔध ते बात नहीं इतनो अलि टूटि कै। प्रेम सबै बिसराइ कै आपनो औ तिन को सिगरो सुख लूटि कै॥ पै इतनो समझै नहिं बावरी सांचहूं बैठी अहै मद घूटि कै। चन्द तजी कब चंदकला कब गौर गिरी अरधंग सों छूटि कै ॥६२॥

"प्यारी की डीठ है काम कटारी"

सवैया।

रीति है कै कोऊ मोहन मंत्र की कै रति की है सखी कोऊ प्यारी। सौति मनोहरता की किधौं कै कटाच्छ की है जुवती सुकुमारी॥ कै हरिऔध क्रिया दृग कंज की कै है कला जग जीतनवारी। कैधौं सिंगार की सांग अनी किधौं प्यारी की डीठ है काम कटारी ॥६३॥

भौहैं दोऊ अति तीखी कृपान हैं है बरुनी बरछी ते करारी। गोले अजायब अम्बक हैं पलकैं जुग हैं तुपकैं

कलवारी ॥ फांस अपूरब डोरे अहैं हरिऔध है अंजन सैफ दुधारी । बान बिखीले अनेविबि नैन हैं प्यारी की डीठ है काम कटारी ॥६४॥

है नहीं सील सनेह भरी न है सीतलता सरसावनवारी । मोहन बारी न है जग की न है प्रानिन को चितचोरनवारी ॥ तू हरिऔध की माने कहीं कबौं कोऊ न मानिहै बात तिहारी । काढ़त प्रान को पैठि हिये अरी प्यारी की डीठ है काम कटारी ॥६५॥

आज मिल्यो इन आंखिन को फल ऐसी अनूपम जोरी निहारी । कैसो सरूप है भाव हैं कैसे अहै कितनी इन की छबि न्यारी ॥ हाय ! कहा करि कोऊ बचै हरिऔध महा इन सों हम हारी प्यारे को बंक बिलोकन बान है प्यारी की डीठ है काम कटारी ॥६६॥

"आसन मारे"

सवैया ।

सूत पै बालुका भीत रची अहै बेगवती तटिनी के किनारे । पीपर पात की छोर पै दीखत बारि की बूंद बयार के द्वारे ॥ या छनथायी सरीर में प्रान अहै हरिऔध न साँस सहारे । मोम के मंदिर माखन को मुनि बैठो हुतासन आसन मारे ॥६७॥

ऐसो प्रताप है या जग में तप जोग को भाखत हैं बुधवारे । सीतलता दरसै दिननाथ में तू परसै करसों नभ

तारे ॥ ह्वै सकै साँची सोऊ हरिऔध जू कोऊ कदाँच जो ऐसो उचारे। मोम के मंदिर माखन को मुनि बैठो हुतासन आसन मारे ॥ ६८ ॥

सूखे पयार के कानन मैं तन लाह के तारन को पट डारे। माला लिये कर पारद की निज घी के कमंडलु को ढिग धारे ॥ घोर तपोबल सों हरिऔध जू तीखन पौन अहार सहारे। मोम के मंदिर माखन को मुनि बैठो हुतासन आसन मारे ॥ ६६ ॥

बात कहा कहिए बलि तात की जानत हैं सब जानन-वारे। श्री हरिऔध की सौं हम जोगिन हीं गुन जानत जोग के सारे ॥ हौं दिखराइहौं तोहि भटू तजि कै हठ जो मम संग सिधारे। मोम के मंदिर माखन को मुनि बैठो हुतासन आसन मारे॥ १०० ॥

"सालत सौति बचाइबो तेरो"

सवैया।

कैसी करैं कित को चलि जाँय न भावत है छन भौन बसेरो। मारि मरौं कि जरौं दव मैं यह चाहत है दुखिया मन मेरो ॥ फूटि क्यों भाग गयो हमरो भलो हाय भयो झगरो निवटेरो। मारिबो पी को न सालत है पर सालत सौत बचाइबो तेरो ॥१०१॥

" एक ते ह्वै गईं द्वै तसवीरें "

सवैया।

थापन के हित प्रेम महातम राखन काज सनेह

नज़ीरें। पूरन प्रेम प्रकासन कारन मेटन काज घनी भव भीरें ॥ या जग चित्रपटी में अहो हरिऔध बिना बिधि की ततबीरें। श्रीबृखभानुजा औ ब्रजचंद की एक ते है गईं द्वै तसवीरें ॥ १०२ ॥

"इन्दिरा सागर बीच रही है"

सवैया।

आधेई अंगन की मिसकै अनुरागिनी संकर की निबही है। बृद्धा बनी रति सी तरुनी बकवाद की सारदा बानि गही है ॥ रूप तिहारो निहारिकै राधिके नाकनटीन की कौन कही है। लाज सों भाजि सहोदर के संग इन्दिरा सागर बीच रही है ॥१०३॥

" साँच में पाँच निसाकर देखे "

सवैया।

जो कोऊ झूठ कहै तो कहै अब को इन बातन को अवरेखे। पै या धरा पै कहो किन आज लौं पाँच मयंक को आँखिन पेखे ॥ नैनन मूँदि समाधि में बैठि अहो हरिऔध बिनाहिं परेखे। संभु के पाँचहूं सीसन पै कहूं साँच में पाँच निसाकर देखे ॥१०४॥

" न जरे पर लोन लगाइये जू "

सवैया।

तुम तो हौ सुजान त्यों जानो सबै तुम को क्यों अजान बनाइये जू। अँसुआ अँखियान में क्यों उमड़े कहो कैसे तुमैं समझाइये जू ॥ हरिऔध पै मानो कही इतनी करिकै

जो न नेह निबाहिये जू। परपीर बिचारि कै आपनी सी न जरे पर लोन लगाइये जू ॥१०५॥

" जोरन देत नहीं मुख सों मुख "

सवैया।

अंगन दाह दुगूनी भई सबै हाय ! अनंग हर्यो हमरो सुख। कैहै कहा हरिऔध कहो अधरामृत पान को पैहै न जो रुख ॥ जीवन मूरि कहाँ हौं कहौं ना सजीवनमूरि हूं सों दबिहै दुख। जीहैं न जीवनहू रहे जो हमैं जोरन देत नहीं मुख सों मुख ॥१०६॥

"बासुरी तान जो कान परैगी"

सवैया।

चैन हमारो नसैहै सबै प्रतिरोमन मैं बिरहागि बरैगी। कानिहूं रैहे नहीं कुल की सखि आन की सीख न काम करैगी ॥ जाइ कोऊ बरजो हरिऔध को नातो सबै बतिया बिगरैगी। प्रानहू रैहै न अंगन मैं यह बाँसुरी तान जो कान परैगी ॥१०७॥

" भींजत आप बचावत मोही "

सवैया।

गोरस लै अबै आई इतै नभ मैं घिरि आई घटा तब-लोहीं। हौं उर मैं अकुलाई महा जलपात सों भो सबै गात भिजोहीं ॥ श्री हरिऔध लों सूधो कबों जेहि दीठहुं नाहिं

लखी ललचोहीं । तू कत भौंहैं नचावत बीर जो भींजत आप बचावत मोहीं ॥ १०८॥

"ब्रजराज मिलैं सो इलाज करौ"

सवैया।

अँखियां कलपैं अवलोकन को कत कुंजनजान ते बाज करौ। उर पीर उठै हौं अधीर भई तेहि की ततबीर हूं आज करौ॥ हरिऔध की सौंह जो मोचन मैं दुख मों दुखिआन के व्याज करौ। अब लाज ते काज कहा सजनी ब्रजराज मिलैं सो इलाज करौ ॥१०६॥

"सीत बड़ो बिपरीत करै"

टोटक छंद।

रबि को ससि लौं अति सीत करै, जल को पल मैं नवनीत करै।
तजि प्रीत न तू अनरीत करै, लखु सीत बड़ो बिपरीत करै ११०

खड़ीबोली।

"बहार"

चौतुका।

लपट के कहने लगे मुझ से वो अरे दिलदार।
सता न मुझ को तू इतना जता न झूठा प्यार॥
तेरे चले गये मुझ को न जीने देगी यार।
अजब अदा से ए आती हुई बसन्त बहार ॥ १११ ॥

"होता नहीं"

चौतुका।

तुम से मिलने की आस अब न रही।

क्या बुरी बात हमने फिर यह कही ॥
मान होता है रूपवालों को ।
अपने कहने का ध्यान होना नहीं ॥ ११२ ॥

"आया"

चौतुका।

अंग किसलय समान है पाया ।
होंठ फूलों पै रंग है लाया ॥
फिर समझ में हमें नहीं आता ।
जी में कैसे कठोरपन आया ॥ ११३ ॥

"सराहों तो को मैं"

सिखरिणी छंद।

सराहों तोको मैं जनन मनवारे मुरअरे ।
उचारों तेरो मैं सुजस हरि प्यारे हग भरे ॥
तिहारी ही आसा रखत प्रति सांसा महत मैं ।
तऊ कैसे स्वामी जगत दुख ऐसे सहत में ॥११४॥
सराहों तोको मैं गुनन कहि तेरे सब समै ।
तिहारे बैनों में बिकल मन मेरो बहु रमै ॥
तिहारे द्वारे को कबहुं न पधारे तजि कहीं ।
तऊ तेरी प्यारी लखत छबि न्यारी हम नहीं ॥११५॥

"रहेंगे"

चौतुका।

चुप चाप कही सुनी सहेंगे. ।
कुछ भी न किसी से हम कहेंगे ॥

भूलेंगे कभी न तुम को जीते।
हो कर के तुमारे ही रहेंगे ॥११६॥

"आता नहीं"

ग़ौतुका।

क्या कहें हम से तो अब कुछ भी कहा जात नहीं।
दुख लिखा है भाग में जिस के वह सुख पाता नहीं ॥
हम तरसते हैं तुम्हारे देखने को रात दिन।
देखने भी तुझ को मेरी ओर पर आता नहीं ॥११७॥

"बिनोदबयालीसा"

दोहा।

पावन गुन गावत सदा, तजि प्रपंच करि प्यार।
कर जोरे भावन सहित, करि नव नेह प्रचार ॥१॥
चार पदारथ पाइयत, नन्द कुँवर के जाप।
एक पाद पंकज गहे, दूर होत सब ताप ॥२॥
शारद ससि सोहत गगन, बरसत सुरस अथोर।
भू आभा दूनी भई, छई छटा चहुं ओर ॥३॥
नभआभा औरै भई, बढ़ी बिभा ससि मांहिं।
तिगुन तेज तारन लस्यो, बसुधा बारन पाँहिं ॥४॥
अमल धवल नभतल भयो, नवल प्रभा को पाय।
खिले कमल जल मैं लसत, पल पल नव छबि छाय ॥५॥
निकरत नभ में निरखियत, रसमय किरन पसारि।
रतनाकर अंकम रतन, नव रतनन छबि धारि ॥६॥
नैनन के चारी किये, प्यारी रसबस होत।

एक उँज्यारी नैन की, जीतत ससि की जोत ॥७॥
चढ़ी दुगूनी चारुता, बरस चतुरदस पाय।
इक नख की लाली प्रभा, ससि की लेत लजाय ॥८॥
दूनी मुख सुखमा फबी, भई छगूनी आब।
ताब न महताबहिं रही, भयो उदधि गरकाब ॥६॥
बरस पंचदस की तिया, तेजवंत सब गात।
ससि सिसकत सौंहै परे, सूर सूर है जात ॥१०॥
मैनबान बाहत बिखम दाहत जलनिधि तात।
त्रिविध पौन तापित करत, अंग अंग थहरात ॥११॥
चहूं ओर मुख के लसत, दुगुन दिनेस उजास।
विवस होत बुधि निरखिकै, रसमय दसन बिकास ॥१२॥
दोऊ नैनन में रही, छबि रावरी समाय।
चहूं ओर तिहुंलोक में, तूही एक लखाय ॥१३॥
सजी सेन दुहुं ओर भरि, दिसन भयावन सोर।
भरे धूर नभ में भई, भानुकला बिसभोर ॥१४॥
नभ लाली छाई बिखम, खुले कपाली नैन।
किलकिलात काली फिरी, किये कुचाली मैन ॥१५॥
एक ओर बाजत पनव, एक ओर करतार।
मंजु मधुर सुर सुनि परत, दस दिस मुदित अपार ॥ १६ ॥
मधुर तान गूंजत गगन, तजत तेज गुन भान।
रसमय करत बसुंधरा, समय सुरन को गान ॥ १७ ॥
मानहीन कोउ होत नहिं, एक हीन गुन पाय।
गुन गरबित में नहिं कबौं, गुनगरिमा दरसाय ॥ १८ ॥

काटे लौं कसकत रहत, अस कत बोलत बैन।
अकरुन किये कहा फिरत, करु सकरुन ए नैन ॥ १६ ॥
हिलि मिलि वे चलि जात हैं, ए दृग रहहिं बिसूरि।
नैनन हूं को देखियत, नैनन पारत धूरि ॥ २० ॥
छकी गमन सुनि छैल को, बनी छबीली मूक।
छटपटात छित पर परी, छाती भई छटूक ॥ २१ ॥
बाजू के बलही रहौं, यह बतरावति लाल।
बाजू पकरि केवार को, बाजूवारी बाल ॥ २२ ॥
कबौं केलिहूं के समै, सकी न जाहि सकेलि।
बहु अवहत आई बहू, तू वाही अवहेलि ॥ २३ ॥
पिय जिय राजी भो तजी, सजी सौत सब धीर।
मँजी रही कब की जु यों, बजी मंजु मंजीर ॥ २४ ॥
कारे कारे कूबरे, सिगरे बरन लखाहिं।
बरनि सकत कैसे कोऊ, सुबरन बरनी काहिं ॥ २५ ॥
काहि न नकवानी भई, तनव तोहि तिय जोय।
नकटी नाक बिना कटे, नाकनटीहूं होय ॥ २६ ॥
केलिथली तजिकै अली, छली छैल अकुलात।
दली मली अकली लली, चली गली में जात ॥ २७ ॥
सरत सकारे काज नहिं, बनत नकारे मोहिं।
ए कारे कारे सकल, निपट नकारे होहिं ॥ २८ ॥
ए दृग तिरछेई चलत, कुटिल भृकुटि बसुजाम।
बिनसुआस पूजेहुँ क्यों, भयो सुआसिन नाम ॥ २६ ॥
लौटावत लूटी परी, लौटि लपेटे भाग।

लटपटात लोयन गये, बँधे लटपटी पाग ॥ ३० ॥
अनुदिन अमत बिलोकियत, इन बपुरी अँखिआन ।
अखिल जगत मैं मिल सक्यो, पै तिल ताजि नहिं आन ॥३१॥
आंचर क्यों न सम्हारियत, ए कुच उघरत बाम ।
काहु कलमुहें से परै, राम करै जनिकाम ॥३२॥
ए उमड़े अंसुआ नहीं, कत पुरवति अभिलाख ।
अरी सनेह भरी लसै, यह तिलवारी आंख ॥३३॥
गो नैनन बेलमाइ ए, नैन करत उतपात ।
का अजगुत की बात जो, जात जात मिलि जात ॥३४॥
चली उतायल तजि कहा, जसै लीजत क्यों नांहिं ।
पीर होत एरी अली, मेरी पसली मांहिं ॥३५॥
रिस कारन कछु ना कहत, भयो कहा है तोहि ।
आज सकारे ही कहा, कहत सकारन मोहि ॥३६॥
कैसो रस उपजत हिये, क्योंहूं कहत बनैन ।
औचक मैन भुजा गहत, परत भुजा पर नैन ॥३७॥
बाल भाल बिंदुली परी, अरी न अलक लखाय ।
नागिनि मनि मुख मैं लिये, बसी ससी मों आय ॥३८॥
नीली पीली लाल मुख, सोहत बेंदी नांहिं ।
सनि सुरगुरु मंगल जुरे, निसिमनि मंडल मांहिं ॥३९॥
निर्मल नीले नभ दिपत, नव दुतिवंत कलिन्द ।
फले फूले कमल पै, भूले फिरत मिलिन्द ॥४०॥
हरे लेत काको न मन, खिले फूल यह लाल ।
हरी हरी यह पत्तियां, हरी हरी यह डाल ॥४१॥

चाह भरी अंखियान ते, हम चितवत तुव ओर।
पै न चूकि चितयो कबों, तू एरे चितचोर ॥४२॥

"मयंक नवक"

कल्पित छन्द।

इस नीले निर्मल अनन्त नभ में-उज्जल चमकता हुआ।
ताराओं पर बिजय लाभ करके-मन में उमगता हुआ॥
सीतल किरनों को पसार करके-रस को बरसता हुआ।
शोभा देता है मयंक देखो-मृदु मंद हँसता हुआ॥१॥
मंद मंद हँसता हुआ गगन में-जो है बरसता सुधा।
अपना कोमल कर पसार करके-जो है परसता सदा॥
जिस की बाकी छबि निहार कर के-आंखें अघाती नहीं।
इतने गुनवाला मंयक प्यारा-होगा जगत का न क्यों॥२॥
वह अति प्यारा चांद देख करके-जिस की अनूठी छटा।
किसके जी में है भला न बहती-धारा सुधा की भली॥
काले काले दाग हाय! उसमें-भी हैं दिखाते हमें।
आकर के इस जगत बीच किसको-दोषी न होना पड़ा॥३॥
अति मरजादा शील धीर जलनिधि-है जन्मदाता पिता।
पारबतीपति परम पूज्य सिरपर-है बास जिस का सदा।
पदवी भी जगबन्दनीय जिस को-द्विजराज की है मिली।
हा! बिधना ऐसे महान ससि को-तूने कलंकी किया॥४॥

भ्राता धन्वन्तर समान ज्ञाता-भगिनी स्वयं इन्दिरा।
आदरदाता पूजनीय पशुपति-बारीश पाता पिता॥
सनकादिक सुर सिद्ध संघ सेवित-श्रीबिश्नु भगिनीपती।
अपराधी द्विजराज को न तबभी- दोषापनोदन हुआ॥५॥
लोग चढ़ाकर नाकभौंह उसको- चाहे कलंकी कहें।
गुरुतियगामी महानीच कहकर- चाहे न लें नाम भी॥
घटने बढ़ने दिन मलीन होने- की भी कुचरचा करें।
रंजन करताहै हृदय रजनिका-पर एक रजनीस ही॥६॥
राका रजनी के समान रंगिणि- जिस की मनोहारिणी।
रूपवती रोहिणी आदि जिसकी- हैं सप्त बिंशतिप्रिया॥
हा जगदीश्वर! वह कवीक पतिभी- गुरुबामगामी हुआ।
कामी जन का अकरणीय कुछभी-संसार में है नहीं॥७॥
दिन में रहता है मलीन खोकर- अपनी अनूठी छटा।
घटने बढ़ने का कुरोग भी है-सब काल पीछे लगा॥
एक निशा मेंही मयंक रहता- पूरा प्रभावान है।
इस दुखमय संसार में सदा से- सुख अंश थोड़ा रहा॥८॥
अति कोमल कमनीय कान्तिवाले- प्यारे कलानाथ को।
कवलित करता है सकोप आकर- सुत सिंहिका को बृथा॥
होता है तो भी मयंक द्वारा- कितने जनों का भला।
संकट में भी जो उदार जन हैं-तजते भलाई नहीं॥९॥

दिनेशदशक।

कल्पित छन्द।

स्वच्छ सरोवर सलिलराशि उत्थित-सद्वीचि उद्दीप्तकर।
अमल कमल कुल को प्रफुल्लकारी-त्रयलोक आलोक प्रद॥
फैला करके अरुण अंशुमाला-निर्मेघ आकाश में।
उदयाचल पर उदयदीप्तिदाता-देखो दिवाकर हुआ॥१॥

हैं काले काले कुअंक कितने-जैसे कलानाथ में।
वैसेही कितने कुअंक अंकित-हैं पद्मिनी प्राण भी॥
पर भूलेभी कभी उसे कोई कहता-कलंकी नहीं।
तेजस्वी का तेजही सदा से-दोषापहारी रहा॥२॥

ताराओं को तेजहीन करके-तूने तिरोहित किया।
छिति नभ छाई छपा प्राणपति की-प्यारी छटा छीन ली॥
दिव्य गुणों वाला दिनेश तुझसा-देखा नहीं दूसरा।
पर का तू उत्कर्ष है न सहता-तुझ में यही दोष है॥३॥

उज्जल मणि निर्मल अनन्त नभ का-दिङ्मण्डलालोकप्रद।
पोषणकर्ता निखिलप्राणिगण का-पाता अखिल विश्व का॥
पंकजकुल का परम प्रीतिभाजन-तमराशिनाशी सदा।
दिव्य गुणोंवाला प्रदीप्ति दानी-तूही दिवानाथ है॥४॥

पोषण करता है प्रकाश देकर-पूषण निशानाथ को।
प्रातःकाल वही निशंक उस को-करता प्रभाहीन है॥
अवलम्बन के सामने सदा से तेजस्विता है बुरी।
प्रतिपालित का दुसहदर्प सहते-देखा किसी को नहीं॥५॥

गाते हैं गुण बिहँग बृन्द तेरा-प्रातःसमय प्रेम से।
जगज्जीव तरु लता बेलि तृण का-तू जीवनाधार है॥
थोड़ी भी अपकीर्त्ति है न इस में-ऐ लोकलोचन बिभो।
अवलोकन करता उलूक तेरे-उत्कर्ष को जो नहीं॥६॥

धारण कर के रूप रंग कितने-तारे गगन में उगें।
कान्तिमई कमनीय मूर्त्ति लेकर-होवे कलाकर उदै॥
अवनीतल पर प्रभापुंजवाले-मणि दीप लाखों जलें।
तेजोराशि बिना दिवाकर कढ़े-खिलती कमलिनी नहीं॥७॥

अपनी अति उज्वल बिचित्र किरणें-समभाव से सर्बदा।
बितरण करता है सरोजरंजन-सारे जगज्जीव को॥
उस से तृणतरु एक एक रजकण-होता प्रभावान है।
भावुकजन हैं भुवनबीच जितने-उनका यही भाव है॥८॥

पंकजपुंज उदय प्रभाकर भये-होते समुत्फुल्ल हैं।
अन्तर्हित हैं कुमुदबृन्द करते-अपनी बिकासच्छटा॥
भेद नहीं रखता दिनेश तब भी-उज्वल प्रभादान में।
हैं जग में सम शत्रु मित्र दोनों-समदर्शियों के लिये॥९॥

पाखंडीजन का प्रचंड सब दिन-प्राबल्य पाता नहीं।
होती है परिणाम में सदा से-शुभ सत्यही की बिजै।
अंत धरातल को प्रदीप्त किरणें-करती प्रभावान हैं।
घन से चिरदिन मारतण्डमंडल-आच्छन्न रहता नहीं॥१०॥

षट्ऋतु ।

बसन्तवर्णन ।

कवित्त ।

बौरे बौरे आमन पै बोलन लगे हैं पिक मधुपजमात हूं को मोद अधिकानो है। मंद मंद सीतल समीर सरसन लागी दिसि दिसि सौरभ सरस बगरानो है ॥ हरिऔध हरित हरित कल कोंपल में कलित कुसुम को कदम्ब बिकसानो है। कैधों अनुरागन उमगि जग और भयो कैधों बन बागन बसन्त दरसानो है ॥१॥

ठौर ठौर भौंरन लग्यो है झुण्ड भौंरन को कोकिलकलाप चारों ओर बगरानो है। अम्बन अनारन को रंग कछु औरे भयो कलित कदम्बन मों अब अधिकानों है॥ हरिऔध हरे हरे पात लतिकान लागे पादप पलास सों पथिक भरमानो है। बीथिन बजारन मों बेहर बहन लागी बिपिन बगीचन बसन्त दरसानो है ॥२॥

पादप पलास में लगाय पुंज पावक को पीत करि पातन को गात मन मानो है। बौरो करि बागन में बिपुल रसालन को मत्त करि कोकिल को कुल उमगानो है ॥ हरिऔध धूरि पूरि बिपिन बगीचन मों अपत बनाय रूखराजि हरखानो है। दुखी बिरहीनदाह दून दरसावन को दई मारो दुखद बसन्त दरसानो है ॥३॥

बिकासित बारिज समान बिबिनैनन सों औधहरि आँसुन को रस बरसानो है। कुसुम पलास सम अम्बक भये

हैं लाल बैहर लौं सांसनसमूह अधिकानो है ॥ बौरन सरिस बौरे बैन निकसन लागे पातन के पुंजन लौं मुख पियरानो है। बिछुरि गये पै वा बिसासी के बियोगबस बदन बियो-गिन बसन्त दरसानो है ॥ ४ ॥

किंसुक कुसुम लौं सरीर में लगी है आग बिपिन प्रसून लौं बियोग बिकसानो है। द्रुमन के पातन लौं अंग अंग पीरो पर्‌यो देखि कंठ कूकन को पिक सकुचानो है ॥ लह-लही लता के नवीन दल जूहन लौं हरिऔध दूख हियरे को हरियानो है। बौरी ! कहा भौंरी सों फिरों न भरमत आज बालम बिदेस औ बसन्त दरसानो है ॥५॥

बौरे आम किंसुक कुसुम कचनार फूले ललित लतान में सुदल सरसानो है। कलरव कोकिल के कुल को ककुभ छायो चंचरीक चपल को चाव परसाने है ॥ हरिऔध बनन बिकास भो प्रसूनन को बारिज बरुथ हूं सों रज बरसानो है। बौरी ! बार बार कत बिहरै करेजो नाहिं बालम बिदेस औ बसन्त दरसानो है ॥६॥

कोकिल कलामी को सुमन मतवारो भयो रमत मिलि-न्दहूं सुमन रसमाने पै। किंसुक कदंब जाल बिकसि निहाल भये कुसुम कदम्ब भे सरस बिकसाने पै। हरिऔध तरुन को तनहूं तरुन [illegible] भयो पात सरसाने पै। एरे निरदई तोहि दई मति कैसी दई बसत बिदेस जो बसन्त दरसाने पै ॥७॥

पीरे भये पातपुंज पादपसमूह हूं के पीरी भई सरसों प्रसून पीरे लाई है। अन्न पकि पीरे परे अगनित खेतन मों फूलन सों पीरी ह्वै के रहर अघाई है॥ हरिऔध पीरे पाग बाँधि औ बसन धारि पीरी भई जनताहूं बाजत बधाई है। एरी मेरी आंखिन में छाई पियराई नाँहिं पीरे बौरवारे वा बसंत की अवाई है॥ ८॥

सवैया।

ह्वै गये हैं दिन बीर बसन्त के कोकिल को इतरैवो छजै ना। पै हरिऔध सों कूकत है बहु डारन बैठि कै मौन भजै ना॥ होत है पीर घनी हिय में तऊ पातकी भूलि कै नेक लजै ना। साँच है है ह्वै खग जानैं कहा अरी सार यहै उपकार तजै ना॥ ९॥

ऐसोई दूखत हो हियरो अब कैलिया कूकत मौन भजै ना। लागे हरे तरु होन सबै त्यों प्रसून पै गुंजत भृंग रजै ना॥ फूलन लागे पलास नदाहिबो नेक जिनैं हरिऔध सजै ना। पै कहै कौन बसन्त सों जायरी सार यहै उपकार तजै ना॥ १०॥

कुंजन कूजन दै पिकपुंज को चाव सों पंकज को अलि सेवै। फूलि कै दाह बढ़ावन दै दई मारे पलासन को करि टेवै॥ होइ हरे तरु जूहन को हरिऔध हमैं दुख देवन देवै। बौरि कै बौरी बनाइ बियोगिनी क्यों तरु अम्ब तू पातक लेवै॥ ११॥

" ग्रीष्म वर्णन "

कवित्त

वायु ते बिजन ते बसन ते बरे तिन ते बिदहत बन ते ब्यथित ब्रहमंड ते। तृन ते तरून ते तपन ते तरंगन ते तोय ते तरनि ते तपत नवखंड ते॥ हरिऔध ग्रीखम गजब गरमान लाग्यो गरद ते गोसन ते गगन अखंड ते। आग ते अँगार ते अगारन ते अंगन ते अवनि ते आँगन ते आतप प्रचंड ते॥ १॥

सीरे सीरे बसन औ ब्यंजन बरफ बोरे बारुनी अँगूर की बलित बहु ठंड ते। औधहरि अरक अनार औ गुलाब-नीर चन्दन चहल पूरयो घनसार खंड ते॥ तरतहखाने त्यों उसीर के उटज आछे तरुनी नबीम पूरी त्रैगुन उमंड ते। कहा त्रास ताको जाके पास हैं बिलास एते गरबित ग्रीखम के आतप प्रचंड ते॥ २॥

दुखद दवारि सम बहत बयार चंड कढ़त अपार आँच भूतल अखंड ते। निकसत बनत न भौन ते किवारहूं लौं दहत तमाम अंग तपन उदंड ते॥ हरिऔध ठंडहूं तकत तहखानन को जब सों छयो है आनिग्रीखम घमंड ते। प्रातही ते पुहुमि अकास औ अवासन में आग सी लगत आली आतप प्रचंड ते॥ ३॥

किधौं ह्वै त्रिनैन को त्रितिय नैन आवत है किधौं तचि बाडव अनल बरिवंड ते। हरिऔध किधौं मिलि फनिपति फूकन सों किधौं पूरि पावक प्रलै की झारचंड

ते ॥ दिसन को दावा सी दहत जो बहत बायु कढत किधौं है सो दवारि चक्र खंड ते । किधौं दहि "मारतण्ड मण्डलज" लूकन ते किधौं तपि ग्रीखम के आतप प्रचंड ते ॥४॥

दिसन भभूकें उठैं जरत जलाकन सों पावक लगै है पौन पूखन उदंड ते । प्रानिन को प्यास ते पतन निज प्रान होत सूकें सर सरित जमाति जोति चंड ते ॥ हरिऔध जब सों भयो है दाप ग्रीखम को तांचि तहखाने तपैं तपन अमंड ते । फूकें आनि दहत दवागिन लों देहिन को लूकें निकरैं जो लूमि आतप प्रचंड ते ॥५॥

किधौं पीन पावक की लपट अचूकन ते किधौं कोऊ बीर के दवाशर उदंड ते । किधौं त्रिपुरारि के त्रितिय नैन लूकन सों हरिऔध किधौं बड़वागि बरिवंड ते ।। जगत मैं ऐसो आज जोर भो जलाकन को किधौं कालिका के कोप अनल अखंड ते । किधौं प्रलय पूखन की प्रबल मरीचिन ते किधौं चंडग्रीखम के आतप प्रचंड ते ॥६॥

दीह दाह आपही दुरत नहिं क्यों हूं हुतो तपत उसा-सन की तपन अखंड ते । रह्यो तन ऐसही तचत दिन रैन मेरो दहत हुतोई हीय बिरह अखंड ते । औधहरि अब तो प्रबल भो निदाधदाध कहत बिचारि याते मति बरिवंड ते । बालम बिदेसी जो बिबेकी है मिलैगो नांहिं बावरी बचौंगी तो न आतप प्रचण्ड ते ॥७॥

पूरब मैं ग्रीखम को पूखन प्रकास्यो आनि तीन लोक तापित करत कर चंड ते । ताके त्रास बालम बियोग सों

व्यथित बाल तकि तहखानो खूब कढी गृहखंड ते ॥ औधहरि ता छन प्रतीत अस ता सों भयो आँच उमड़ी जोऊ बितात न अठंड ते। देहिन दिसान के दहन में दुगूनो होत बपुख बियोगिन को आतप प्रचंड ते ॥८॥

बिखम बयार झार भूरि झरसन लागी धूरि पूरि गगन दवारि परबस भो। आतप ते तृन तरु पातहू तचन लागे बिपुल बिहंग हूं बिकल बरबस भो ॥ मेरी कही मानि हरिऔध मंजु छाँहन में नेसुक सिरैये गैल गमन अबस भो। तीखन भई है धूप भीखम भयो है भानु ग्रीखम तपन अंग आलस बिबस भो ॥९॥

सवैया।

बाजि सों बाज सों बारन सों बत सों बक सों बिगरी कलकानी गोप सों गाय सों गीध सों गोह सों गीदर सों गरमी गरमानी ॥ बागन में बनमें बिखरी हरिऔध बिलोकि निदाघनिसानी। कोल सों काक सों कोकिल सों कढ़ी कीस हू कीर सों आरत बानी ॥१०॥

आग सी लागत है दसहूं दिसि होतही भोर महा भयदानी। होत है तावा समान धरातन फूंकत है बहि बायु तपानी ॥ खौलत है जल कूपन को हरिऔध कहै तलफैं सब प्रानी। कौतुक का उचरै जग जो अस ग्रीखम को लखि आरत बानी ॥११॥

कैधौं बियोगिनी घूमत है कोऊ घोर चिकार कै पौन समानी। कैधौं पियासो कोऊ पगि प्यास में सोर कै मांगत

है कछु पानी। कैधौं बहै यह ग्रीखम बात अहो हरिऔध महा धुन ठानी। कैधौं बसन्त बियोग सों बावरी बायु उचारत आरत बानी ॥१२॥

ग्रीखम की उपमा लिखिबे हित कागद लेखनी औ मसियानी। पास मँगाय धरी हरिऔध महामुद सों मन में सुख मानी ॥ पै हिय सों रसना लगि आवत सूखि गयो मसिभाजन पानी। लेखनी छार भई दह्यो कागद जीह जरी कहि आरत बानी ॥१३॥

ऐसो बिचार भयो लिखिये कछु ग्रीखम की उपमा मन-मानी। पूछनों का स्रो रह्यो ततकाल लई कर लेखनी औ मसियानी ॥ पै हरिऔध परे इतनेहि में छाले अनेक हिये बिच आनी। जीह को छोरि कै भागी गिरा दहती कहती मुख आरत बानी ॥१४॥

पावसवर्णन।

कवित्त।

बिटप में बेलिन में बेलिन बितानहू में बिलसत कैसी बारि बूंदन कतार है। बनन में बागन में बिबिध बगीचन में बरही गोहार की बिपुलता अपार है॥ हरिऔध बगर में बीथिन बजारन में बहु बारि धार ही को बिबिध बिहार है। बारिद में बकनबिलास में अकास हूं में बीजुरी बिकास हूं में बरखाबहार है ॥१॥

बिछिगे बिछावने बिबिधबनी दूबन के बारि बहु नारिन सों बहत सदा रहे। नाचि नाचि उठत मयूर तरुछाँहन में मन्द मन्द बारिद सों परत फुहार है॥ हरिऔध हरेपात बरसत बारिबूँद सीकरनवारी जो पै चलत बयार है। बारेक बिलोके बार बार मन औरै होत बीर कैसी बागन में बरखाबहार है॥२॥

कैसी यह मोहत है बेलिन बनाई भूमि कैसी यह बापी में गिरत जलधार है। साँप लौं चलत कैसो बारि बहि नारिन सों मोर नाचि नाचि कैसो करत बिहार है। हरिऔध कैसे धोये पात हिलि भावत हैं पीपी की पपीहा कैसी करत पुकार है॥ बारेक बिलोके बार बहुत बिनोद होत बीर कैसी बागन में बरखाबहार है॥३॥

बोलै लागे दादुर पपीहा पी कहनलाग्यो फेर होनलागी झींगुरन झनकार है। नाचै लागे बरही तड़ित चमकन लागी जनसमुदाय हूं अलापत मलार है॥ हरिऔध प्यारे बिन बचौंगी कहाधौं करि सीकर लै फेर लागी चलन बयार है। घूमि घूमि फेरि नभ घन घहरान लागे बीर ब्रज आई फेर बरखाबहार है॥४॥

ठौर ठौर नाचत समूह मिलि मोरन को गिरि पै पपीहा बैठि करत पुकार है। भई भूमि हरित नवीन बहु दूबन सों कौतुक नदीन बारि करत अपार है॥ हरिऔध घूमत सिखान तरु छ्वै छ्वै घन गरजि गरजि बरसत जलधार

है। हेरे बार बार हौस हिय को न पूरो होत बनन मैं एरी कैसी बरखाबहार है ॥ ५ ॥

कहूं मोर नाचत पपीहा कहूं बोलत है कोकिल करत कहूं मंत्र को उचार है। कहूं बारि बहत गिरत जलधार कहूं कहूं भूमि झुकि परसत तरुडार है। हरिऔध कहूं जोर सरित जनावति है कहूं घेरि गिरि घन करत बिहार है॥ हेरे क्यों हूं पूरो हौस हिय को न होत आली बनन में छाई कैसी बरखाबहार है ॥ ६ ॥

भई भूमि असित तमाल तरु तोयन ते नभहूं लखात कारी तोयद कतार है। घहरत बार बार नभ बारिवाह-व्यूह बसुधा बरहिबृन्द बोलत अपार है। हरिऔध अवनि में उलहत लोनी लता गगन में बीजुरी को प्रगट पसार है॥ बिस्वगत ब्योम औ बिसालिबी बसुंधरा में बूझत समान एरी बरखाबहार है ॥ ७ ॥

प्याला प्याइ मद को प्रवाल सम हाथन सों बार बार प्यारे को करत बहु प्यार है। बकगन पांति को बिलोकत बिनोद मानि बरही बिहार को बखानत सदार है॥ हरि-औध चपला चमाके चौंकि प्रीतम की छाती सों लगति चोरि लेत चितमार है। बँगलान करत बिलास जिन बालम सों बेस उन हीं की बीर बरखाबहार है ॥८॥

बादर न होंय चढ़ी तोपैं चली आवति हैं गरजन होत फैली धुन है अवाज की। बूंदें ना परत बरखत हैं बिखीले बान इन्द्रधनु है ना है कमान रनकाज की ॥ हरिऔध

धुरवान होंहि फांस जेंवरी है झरना लगी है झरी आयुध-समाज की। बीजुरी न होय एरी बधन बियोगिनी की तीखन कृपान है मनोज महाराज की ॥ ९ ॥

घूमि घूमि घहरि घमंडवारे घन आये घरि घेरि घरन झमकि झरलाई है। त्योंहीं पीउ पीउ रटि पपिहा पुकार कीनो तापै केकि कुलहूं करत कुटिलाई है ॥ कारे कारे घन माँहिं प्यारी बकगन पाँति गातगत मुक्तामनि सुरति दिवाई है। एरी मेरी बीर हरिऔध हूं बितीही चहै आयो पापी पावस न आये जदुराई है ॥१०॥

बारिबाह की ना लगी तार है कतार आवै कारे कारे कोट के सवारन समाज की। कौंध है न, तेग की प्रभा है, कूंकैं केकी नांहिं, बोलत नकीब बानी दौलत दराज की। हरिऔध पांति है न बक की, धुजा लखाति, धुनि ना सुनात एरी बारिदअवाज की। धौंसा देत बधन बियोगिनीबरुथ काज आवत सवारी आज मेघ महाराज की ॥ ११ ॥

सवैया।

नाम अहै परजन्य तिहारो बिना तुमरे जग काज सरै ना। जीवन जीवन हो हरिऔध त्यों ताप निवारत बार लगै ना ॥ ऐसो न क्यों बरसो फिर जाहि ते प्रीतम जाइ बिदेस सकै ना जानत हो तुम नीके जहान में सार यहै उपकार तजै ना ॥१२॥

गोरस लै अबै आई इतै तब लों घिरि आई घटा नभ

सो ही। हों उर में अकुलाई महा तजि पंथ जवै चले भाजि बटोही ॥ श्री हरिऔध लौं सूधो दया भरो वापुरो छोहरो नन्द को छोही। तू कत भौंहैं नचावत बीर जो भींजत आप बचावत मोही ॥१३॥

शरदवर्णन।

कबित्त।

परम प्रकासपुंज पूनो की बिभावरी को दिवा लौं दिसन मांहिं दिपन लगोरी है। दीखत दुरेई द्रुम दलन उलूकबृन्द गुंजत मिलिन्द कल कुंजन अजोरी है। हरिऔध बोलत बिहंगजूह वैसही है तारकसमूह हू पै बजर परोरी है। चाहत न चन्द को चकोर रबि जोरी जानि भोरी भई चांदनी को निरखि चकोरी है ॥१॥

हेमन्तवर्णन।

कबित्त।

छूटत न कंप तन केरो छनहूं के हेत सीरी सीरी पौन तापै करत सहाय है। परसत बारि के प्रतीत अस ही को होत पोर पोर आँगुरी की जनु गालि जाय है। हरिऔध धूप हूं में बैठे ना मिटत सीत चन्द हूं ते सीतल दिवाकर लखाय है। सी सी सी करत निसि दिवस सबै सिराय जानत हिमन्त कोऊ कठिन बलाय है ॥१॥

सवैया।

आपने प्रीतम के तन में रुचि सों सिगरो तन आपनो गोवै। लागि कै त्यों पिय की छतियान सों सीत के भै सों

निरापद होवै ॥ नेह भरी हरिऔध की बातन को रस चाखि निसा सब खोवै। भाग वा भामिनी के भले हैं जो हिमन्त में कन्त गरे लगि सोवै ॥२॥

मोंसों अभागिनी कौन है री कहि जात न क्योंहूं घनो दुख होवै। जाइ बसे हरिऔध बिदेस में को छतिया लागि के दुख खोवै ॥ पौढ़त ओढ़ि के साल दुसालन गात सबै तऊ सीत समोवै। भाग वा भामिनी के भले हैं जो हिमन्त में कन्तगरे लगि सोवै ॥३॥

दिनहूं को हिमन्त की आपत ते छिनहूं को न भानु अभीत करै। लगि तीर सी सीतल पौन सरीर मैं हीतल हूं सों अनीत करै ॥ हरिऔध सों एरी भटू मिलि कै अपनो हियरो तू निचीत करै। तजि प्रीत को तू न करै अनरीत री सीत बड़ो बिपरीत करै ॥४॥

शिशिरवर्णन।

कबित्त।

दूर करि हीते त्रास सीत दुखदायनी को औचक करेजो लेत छन मैं कँपाय है। सीरी पौन कबहूं चलत हुती हरिऔध तीर सी चलत सोई नित दरसाय है॥ पादप-समूह निज पातन गिरे ते अब पथिकन सीत सों न सकत बचाय हैं। होत जग कांहिं जौन दुसह हिमन्त हूं से सिसिर न जानी जाय कौन सी बलाय है ॥१॥

दिन दिन जामिनी को मान कम होन लाग्यो दिवस प्रमान हूं बढ़त दिखराय है। अब नहिं वैसो दाप सीत

दरसावत है घाम के लगे पै गात कछु गरमाय है ॥ हरि-
औध बैठे ओढ़ि साल औ दुसालन के गरमी बिचारिहूं को
दाँव लगि जाय है। भाखे बने तऊ तन तीरसी पवन लागे
सिसिर न जानी जाय कौन सी बलाय है ॥२॥

ओढ़ि ओढ़ि बैठत बसन हम तूलहूं के कहाकहौं एरी तऊ
सीत लगि जाय है। सेंकत रहत हाथ पाँव निज पावक सों
तबहूं परसि देखै ठरत बनाय है॥ कौन हरिऔध भाखै
सरदी घटन लागी मोको तो प्रताप वाको बढ़त दिखाय
है। कांपि कांपि उठत करेजो आज मेरो आली सिसिर न
जानी जाय कौनसी बलाय है ॥३॥

ठौर ठौर ऐसो कछू होत उतपात एरी निकसत भौन
ते बसन रँगिजाय है। पीछूं परैं गाइ गाइ गीतन
कबीरन को कतहूं खरी जो कोऊ नारि दिखराय है। हरि-
औध संक ना करत गुरु लोगन की भाँड़न सरिस भयो
जनसमुदाय है। बकत रहत ह्वै निलज्ज नर गारिन को
सिसिर न जानी जाय कौन सी बलाय है ॥४॥

मन रसवारो भयो जानि हम हूं को परै प्रीतम ति-
हारो पै रहत तव भाय है। ठौर ठौर मोद औ प्रमोद
अधिकान लाग्यो ताकी कमी तोहू मैं न परत दिखाय है॥
भीने भांति भांति के उमंग सब दीखत हैं हरिऔध सोऊ
तो मैं अधिक जनाय है। सांची कहै तो सों कैसे कहत
बनत आली सिसिर न जानी जाय कौन सी बलाय है ॥५॥

निदरि बसन्त के मैं दिवस बिताय दीने ग्रीखम गरूरीहूं

को दियो बिसराय है । पावस को त्रास छन जिय में न मेरे भयो दुखद सरद हूं को लियो अपनाय है ॥ प्रानपति प्रीतम बिदेसी भये हरिऔध निबही हिमन्त हूं में सहमि सकाय है । जीतन को जाके ताब तन में न मेरे रह्यो सिसिर न जानी जाय कौन सी बलाय है ॥६॥

शिशिर अन्तर्गत होलीवर्णन ।

कवित्त ।

कैसो कूल कालिन्दी कदम्बतरुछाहन में कानन में कुंजन में कौतुक ठनोरी है । केसर ते कनक कमोरिन ते कुंकुम ते कलित पिचूकन ते कसर कढोरी है। हरिऔध कैसी करी कान्ह करतूत आली कहत न क्योंहूं बनै कौसल टरोरी है। कचते कपोलन ते कान ते कुंचन ते किसोरी की कथान ते कढ़त कल होरी है ॥१॥

सुछबि अबीरवारी बांकी बलबीर जू की आँखिन में बीर बार बार बसिबेलगी । गुनि गुनि गारी वा गरूर वारे ग्वारन की गरबीली ग्वारी हूं गुमान ग्रसिबेलगी ॥ हरिऔध हेरैं हित होरी को महा हुलास हीय वारी हरखि हिये में हँसिबेलगी । धूम धुधकीन की त्यों धधक मृदंगहूं की ध्यानन में धमकि धमार धँसिबेलगी ॥२॥

धूंधर अबीर की न घन की घटा है घोर सुर ना तमूर सोर मोरन मचायो है । गमक मृदंग की न धमक पयोद की है बीजुरी की चमक पिचूकन लखायो है ॥ हरिऔध परत फुहारैं नाँहि रंगहूं की जलधारैं तजत जलद जुरि

आयो है। चाँचर मची है नाँहिं तजि नभमंडल को आज मेघमंडल धरा पै आनि छायो है ॥३॥

सवैया।

प्यारी अहै दिन फाग के काहु को आज कहूं कोऊ संक करै ना। घूंघट खोलि दै जाते गुलाल सों श्रीहरि-औधहूं हौस रखै ना॥ होत है मेरो भलो इतनेहिं मैं ऐसो समै नित हाथ लगै ना। यों तो अहै यह रीति सदाहिं की सार यहै उपकार तजै ना ॥४॥

रामायण पंचक।

कवित्त।

कहा कहैं कौन सी जुगुत करि कैसे कहैं चाहिये कथन को बिकास कैसो करिबो। उपमा कहाँ लौं करैं रचिकै प्रकार कौन उचित है कौन सों प्रबंध अनुसरिबो॥ मोको ना जनात हरिऔध हम साँची कहैं नातो कौन काज होत एतो आज अरिबो। मन मानो मोहित रहत मन मेरो हेरि काहू मंजु मानस को मानस को हरिबो ॥१॥

सपनेहूं ऊख की मिठाई को न ध्यान होत स्वाद मिसरी को मीठो लागत न तनको। हरिऔध कन्द को न चाह चित क्योंहू होत चाव रहि जात नाहिं चीनी के चखनको॥ भूलि जात माधुरी मयूख से सरसहूं की रुचत मयूख हूं न काहू भांति मनको। फूटी आंखिहूं से देखि सकत ना दाख हूं को चाखि रस तुलसी कबिंद के कथन को ॥२॥

मन अनुमानै हेरि मंजुता मनोहर को लखि मधुराई होत ध्यान अस ही को है । कोमलता निरखि बिचार मति ऐसो करै देखि जनप्रियता जनात यह जीको है॥ हरिऔध निरखि निपट निकलंकता को भनत हरेक नीति-मान अवनीको है जैसोई रुचिर चारु चरित सियापति को वैसोई कलित कल काव्य तुलसी को है ॥३॥

करन में उपमा करत निपुनाई घनी नीकी नीकी नायिका के नयन निकाई की । लेत जस बल को बखानि बर बीरन के बदत बिचार सों बिखमता लराई की । औध-हरि भरित उमंग औरहूं अनेक भनत बिभूति भोरे भावन भलाई की । कारीगरी काहू सों कहत पै न क्योंहूं बनै तुलसी कबिन्द की कलित कविताई की ॥ ४ ॥

किधौं प्रेमपूरन को दिपत प्रतापपुंज किधौं फल प्रबल प्रयोग दरसात है । किधौं हरिऔध काहू मंत्र को महातम है किधौं मूल कोऊ छन्दपद की जमात है ॥ किधौं तुलसी की कोऊ जुगुत अनोखी अहै रामायन जाते ऐसो रुचत सुहात है । किधौं करतूति काहू कठिन कमाल की है किधौं कौशलेस जस केरी करामात है ॥५॥

भगवतीपंचक।

छप्पय।

द्रवहु दीन पै दयाधारि सुखदाइनि मेरी।
छमहु कियो अपराध मात सरनागत तेरी॥
समन करहु सिगरो कलेस जनि बेर लगावहु।
नासहु सकल कलेस बिखमजर दूर बहावहु॥
हरिऔध कहत करजोरि कै सुनहु मात हितबाहिनी।
करि दया बिश्नु हरि दूख को दूर करहु दुखदाहिनी॥१॥
सुरथनाम नृप को कलेस जिमि दूर बहायो।
बैस्य समाधिहुं केर सकल बिपदा जिमि घायो॥
देवन को दुख दूर कियो पल में जिमि माता।
ब्रह्मा को जिमि दियो त्रान जन की सुखदाता॥
हरिऔध बिनय तिमि कान कै अहो जगत की स्वामिनी॥
करि दया विश्नुहरि दूख को हरहु दयाला नामिनी॥२॥
अहो जगत की मात अहो दुखनासनवारी।
अहो दीन की प्रकृत पीर को करखनहारी॥
अहो सकल संसारकांहिं सुख रूप शिवानी।
अहो मंगला छेमकरी भद्रिका भवानी॥
हरिऔध बिनय सुनि बिखमजर बिश्नुहरी को हठि हरहु।
तिमि कठिन तृखा को सान्ति कै हृदयदाह सीतल करहु॥३
उनपात करत तुम पातक के नासन माहीं।
सब बिधि अहो समर्थ मात यामैं संक नाहीं॥
उन संचत अपराध सदा पै तुम गिरिनंदिनि।

अहो किते अपराध करहिं पलमाँहि निकंदिनि ॥
याते बिनती हरिऔध सुनि अति दयालुता राखि चित ।
निज दास बिस्नुहरि को बिखम दूख दारिकै करहु हित ॥४॥
तव चरनन बल मात किते जग भये सुखारे ।
किते दूख सों बचे किते रोगन को दारे ॥
किते लहे मनकाम अमित की पूजी आसा ।
किते भये बिनदाह किते पाये सुखरासा ॥
अतएव धारि बल ताहि को हरिऔधहुं सोई चहै ।
करि कृपा जननि तू जाहि ते बिस्नुहरि रुज को दहै ॥५॥

त्रि र त्न ।

प्रभुप्रताप ।

षट्पद ।

चाँद वो सूरज गगन में घूमते हैं रात दिन ।
तेज वो तम से दिशा होती है उजली वो मलिन ॥
वायु बहती है घटा उठती है जलती है अगिन ।
फूल होता है अचानक बज्र से बढ़कर कठिन ॥
जिस निराले काल के भी काल के कौशल के बल ।
वह करे सब काल में संसार का मंगल सकल ॥ १ ॥
क्या नहीं है हाथ में उस के वह क्या करता नहीं ।
चाहता जो कुछ है वह फिर वह कभी टरता नहीं ॥
दुख नहीं पाता है वह जिस पर है वह ढरता नहीं ।

कौन फिर उस को भरे जिस को है वह भरता नहीं ॥
जितनी हैं करतूति उस की वह निराली हैं सभी।
उस के भेदों का पता कोई नहीं पाता कभी ॥ २ ॥
कितनेहीं सुन्दर बसे नगरों को देता है उजाड़।
धूल कर देता है ऊंचे ऊंचे कितनेहीं पहाड़ ॥
एक झटके में करोड़ों पेड़ लेता है उखाड़।
इस सकल ब्रह्मांड को पलभर में सकता है बिगाड़ ॥
उस के भय से कांपते हैं देवते भी रात दिन।
मोम हो जाता है वह भी जो है पत्थर से कठिन ॥३॥
राज पाकर जिस को करते देखते थे हम बिहार।
मांगता फिरता है वह कल भीख हाथों को पसार ॥
एक टुकड़े के लिये जो घूमता था द्वार द्वार।
आज धरती है कँपाती उस के धौंसे की धुकार ॥
नित ऐसी कितनीही लीला किया करता है वह।
रंक करता है कभी सिर पर मुकुट धरता है वह ॥४॥
कितनेही उजड़े हुये घर को बसाता है वही।
कितनेही बिगड़े हुये को भी बनाता है वही ॥
गिरनेवाले को पकड़ कर के उठाता है वही।
भूलनेवाले कों सीधा पथ दिखाता है वही ॥
इस धरा पर है नहीं सुनता कोई जिस की कही।
उस दुखी की सब बिथा सुनता समझता है वही ॥५॥
डाल सकता सीस पर जिस के पिता छाया नहीं।
गोद माता की खुली जिस के लिये पाया नहीं ॥

है पसीजी देख कर जिस की बिथा जाया नहीं ।
काम आती दीखती जिस के लिये काया नहीं ॥
बाँह ऐसे दीन की है प्यार से गहता वही ।
सब जगह सब काल उस के साथ है रहता वही ॥६॥
वह अँधेरी रात जिस में है घिरी काली घटा ।
वह बिकट जंगल जहां पर शेर रहता है डटा ॥
वह महा मरघट पिशाचों का जहां है जमघटा ।
वह भयंकर ठाम जो है लोथ से बिल्कुल पटा ।
मत डरो ए कुछ किसी का कर भी सकते नहीं ॥
क्या सकल संसार पाता है पड़ा सोता कहीं ॥७॥
जिस महा मरु भूमि से कढ़ती सदा है लू लपट ।
बारि की धारा मधुर रहती उसी के है निकट ॥
जिस बिशद जलराशि का है दूर तक मिलता न तट ।
है उसी के बीच हो जाता धरातल भी प्रगट ॥
वह कृपा ऐसी किया करता है कितनीही सदा ।
लाभ जिससे हैं उठाते सैकड़ों जन सरबदा ॥८॥
जिस अंधेरे को नहीं करता कभी सूरज समन ।
उस अंधेरे को सदा करता है वह पल में दमन ॥
भूल कर के भी किसी का है जहां जाता न मन ।
वह बिना आयास के करता वहां भी है गमन ॥
देवतों के ध्यान में भी जो नहीं आता कभी ।
उस खेलाड़ी के लिये हस्तामलक है वह सभी ॥९॥
जगमगाती गगनमंडल की बिबिध तारावली ।

फूल फल सब रंग के सब भांति की सुन्दर कली ॥
सब तरह के पेड़ उन की पत्तियां सांचे ढली।
अति अनूठे पंख की चिड़ियां प्रकृतिं हाथों पली।
आंखवाले के हृदय में है बिठा देती यही।
इन अनूठे विश्व चित्रों का चितेरा है वही ॥ १० ॥
जिस ने देखा है अरोरा बोरि एलिस का समा।
रंग जिस की आंख में है मेघमाला का जमा ॥
जो समझले व्यूह तारों का अधर में है थमा।
जो लखे सब कुछ लिये है घूमती सिगरी छमा ॥
कुछ लगाता है वही करतूति का उस की पता।
भाव कुछ उस के गुनों का है वही सकता बता ॥११॥
है कहीं लाखों करोड़ों कोस में जल ही भरा।
है करोड़ों मील में फैली कहीं सूखी धरा ॥
हैं कहीं परबत जमाये दूर तक अपना परा।
देख पड़ता है कहीं मैदान कोसों तक हरा ॥
बह रही नदियां कहीं हैं गिर रहे झरने कहीं।
किस जगह उस की हमें महिमा दिखाती है नहीं ॥१२॥
जी लगा कर आंख को देखो क्रिया कौतुक भरी।
इस कलेजे के बनावट की लखो जादूगरी ॥
देख कर भेजा बिचारो फिर बिमल बाजीगरी।
इस तरह सब देह को सोचो सरस कारीगरी ॥
फिर बता दो यह हमें संसार के सान व सकल।
इस जगत में है किसी की तूलिका इतनी प्रबल ॥१३॥

जब जनमने का नहीं था नाम भी हम ने लिया।
दो घड़ा तैयार दूधों का तभी उस ने किया॥
आपदा टाली अनेकों बुद्धि बल बिद्या दिया।
की भलाई की न जानें और भी कितनी क्रिया॥
तीन पन है बीतता तब भी तनक चेते नहीं।
हम पतित ऐसे हैं उस का नाम तक लेते नहीं॥१४॥
हे प्रभो! है भेद तेरा बेद भी पाता नहीं।
सेस शिव सनकादि को भी अंत दिखलाता नहीं॥
क्या अजब है जो हमें गाने सुयश आता नहीं।
ब्योमतल पर चींटियों का जी कभी जाता नहीं॥
मन मनाने के लिये जो कुछ ढिठाई की गई।
कीजिये उस को छमा प्रभु बात तो अनुचित भई॥१५

कर्म्मबीर।

षट्पद।

देख कर जो बिघ्न बाधाओं को घबराते नहीं।
भाग पर रह करके जो पीछे हैं पछताते नहीं।
काम कितनाही कठिन हो पर जो उकताते नहीं।
भीड़ पड़ने पर भी जो चंचल हैं दिखलाते नहीं॥
होते हैं यक आन में उन के बुरे दिन भी भले।
सब जगह सब काल में रहते हैं वह फूले फले॥१॥
आज जो करना है कर देते हैं उस को आजही।

सोचते कहते हैं जो कुछ कर दिखाते हैं वही ॥
मानते जी की हैं सुनते हैं सदा सब की कही ।
जो मदद करते हैं अपनी इस जगत में आपही ॥
भूल कर वह दूसरे का मुँह कभी तकते नहीं ।
कौन ऐसा काम है जिस को वह कर सकते नहीं ॥२॥
जो कभी अपने समय को यों बिताते हैं नहीं ।
काम करने की जगह बातें बनाते हैं नहीं ॥
आज कल करते हुये जो दिन गंवाते हैं नहीं ।
यत्न करने में कभी जो जी चुराते हैं नहीं ॥
बात है वह कौन जो होती नहीं उन के किये ।
वह नमूना आप बन जाते हैं औरों के लिये ॥३॥
गगन को छूते हुये दुर्गम पहाड़ों के शिखर ।
वह घने जंगल जहां रहता है तम आठो पहर ॥
गर्जते जलराशि की उठती हुई ऊंची लहर ।
आग की भयदाइनी फैली दिशाओं में लवर ॥
ये कंपा सकती कभी जिस के कलेजे को नहीं ।
भूल कर भी वह नहीं नाकाम रहता है कहीं ॥४॥
चिलचिलाती धूप को जो चांदनी देवें बना ।
काम पड़ने पर करें जो शेर का भी सामना ॥
हँसते हँसते जो चबा लेते हैं लोहे का चना ।
"है कठिन कुछ भी नहीं" जिन के है जी में यह ठना ।
कोस कितनेहू चलें पर वह कभी थकते नहीं ।
कौन सी है गाँठ जिस को खोल वह सकते नहीं ॥५॥

ठीकरों को वह बना देते हैं सोने की डली।
रेग को करके दिखा देते हैं वह सुन्दर खली॥
वह बबूलों में लगा देते हैं चंपे की कली।
काक को भी वह सिखा देते हैं कोकिल का कली॥
ऊसरों में हैं खिला देते अनूठे वह कमल।
वह लगा देते हैं उकठे काठ में भी फूल फल॥६॥

काम को आरंभ कर के यों नहीं जो छोड़ते।
सामना करके नहीं जो भूल कर मुंह मोड़ते॥
जो गगन के फूल बातों से बृथा नहिं तोड़ते।
संपदा मन से करोड़ों की नहीं जो जोड़ते॥
बन गया हीरा उन्हीं के हाथ से है कारबन।
कांच को करके दिखा देते हैं वह उज्जल रतन॥७॥

पर्वतों को काट कर सड़कें बना देते हैं वह।
सैकड़ों मरुभूमि में नदियां बहा देते हैं वह॥
अगम जलनिधि गर्भ में बेड़ा चला देते हैं वह।
जंगलों में भी महा मंगल रचा देते हैं वह॥
भेद नभतल का उन्हों ने है बहुत बतला दिया।
है उन्हों ने ही निकाली तार की सारी क्रिया॥८॥

कार्य्यथल को वह कभी नहिं पूछते "वह है कहां"।
कर दिखाते हैं असंभव को वही संभव यहां॥
उलझने आकर उन्हें पड़ती है जितनीहीं जहां।
वे दिखाते हैं नया उत्साह उतनांही वहां॥
डाल देते हैं बिरोधी सैकड़ोहीं अड़चलें।

वह जगह से काम अपना ठीक करके ही टलें ॥६॥
जो रुकावट डाल कर होवे कोई पर्ब्बत खड़ा ।
तो उसे देते हैं अपनी युक्तियों से वह उड़ा ॥
बीच में पड़कर जलधि जो काम देवे गड़बड़ा ।
तो बना देंगे उसे वह क्षुद्र पानी का घड़ा ॥
बन खँगालेंगे करेंगे व्योम में बाजागरी ।
कुछ अजब धुन काम के करने की उन में है भरी ॥१०॥
सब तरह से आज जितने देस हैं फूले फले ।
बुद्धि बिद्या धन बिभव के हैं जहां डेरे डले ॥
वे बनाने से उन्हीं के बन गये इतने भले ।
वे सभी हैं हाथ से ऐसे सपूतों के पले ॥
लोग जब ऐसे समय पाकर जनम लेंगे कभी ।
देस की वो जाति की होगी भलाई भी तभी ॥ ११॥

विद्या ।

द्विपद ।

इस चमकते हुवे दिवाकर से ।
रस बरसतेहुये निसाकर से ॥१॥
जो अलौकिक प्रकाशवाली है ।
औ सरसता में जो निराली है ॥२॥
वह जगद्बंदनीय विद्या है ।
अति अनूठा प्रभाव जिस का है ॥३॥

जोति सूरज जहां नहीं जाती।
यह वहां भी है रंग दिखलाती ॥४॥
जो ससी को सरस नहीं कहते।
इस के रस से हैं मोद वह लहते ॥५॥
यह सुधा है अमर बनाती है।
यह सुयश बेलि को उगाती है ॥६॥
हो गये व्यास बालमीक अमर।
आज भी है सुकीर्ति भूतल पर ॥७॥
कामदा यह सुकल्प लतिका है।
शान्तिदात्री बिचित्र बटिका है ॥८॥
कालिदासादि कामुकों का दल।
पा चुका है अनन्त इच्छित फल ॥९॥
शान्ति इस से शुकादि ने पाई।
दीप्ति जिन की दिगन्त है छाई ॥१०॥
गंग की यह पवित्र धारा है।
जिस ने जा बाल को उधारा है ॥११॥
नीच को ऊंच यह बनाती है।
काठ में भी सुफल फलाती है ॥१२॥
था विदुर का कहां नहीं आदर।
कौन कहता उन्हें न नवनागर ॥१३॥
सद्गुणों का प्रदीप्त पूषण था।
वह विबुधमंडली विभूषण था ॥१४॥
शक्ति है अति अपूर्व विद्या की

धूम सी है विचित्र चमता की ॥१५॥
विश्व के बीच बस्तु है जितनी।
एक में भी न शक्ति है इतनी ॥१६॥
स्वच्छ नीले अनन्त नभतल का।
सूर्य्य बुध सोम शुक्र मंगल का ॥१७॥
इन चमकतेहुये सितारों का।
पूंछवाले अनन्त तारों का ॥१८॥
भेद सब यह हमें बताती है।
मंजु दिल की कली खिलाती है ॥१९॥
सैकड़ों कोस एक कोस बना।
रेल की है अजब हुई रचना ॥२०॥
जो समाचार साल में आता।
है उसे पल में तार पहुंचाता ॥२१॥
है रसायन की ऐसी चारु क्रिया।
सब धरागर्भ जिसने छान लिया २२
बन गई हैं विचित्र नौकायें।
जो जलधिगर्भ में चली जायें ॥२३॥
था असम्भव अनन्त में उड़ना।
युक्ति से दिव्य व्योमयान बना ॥२४॥
अब नये फूल फल हैं उपजाते।
हैं मृतक भी सजीव बन जाते ॥२५॥
देखने भालने लगे अंधे।
पुतलियां कर रही हैं सब धंधे ॥२६॥

बात बहरे समस्त सुनते हैं।
कपड़े बंदर भी अच्छे बुनते हैं ॥२७॥
बोलने चालने लगे गूंगे।
बन गये रंग रंग के मूंगे ॥२८॥
दूरबीनें कलें बनीं ऐसी।
हैं न देखी सुनी गई जैसी ॥२९॥
किन्तु यह सब कमाल है किस का ?
गुणमयी एक दिव्य विद्या का ॥३०॥
बेदमंत्रों के जो हुये द्रष्टा।
हो गये उपनिषद के जो स्रष्टा ॥३१॥
आज भी उन महर्षि की वाणी।
है जगतबीच शुद्ध कल्याणी ॥३२॥
तर्क गौतम कणाद जैमिनि का।
कृत्य पाण्डित्य पूर्ण पाणिनि का ॥३३॥
शंकराचार्य्य का स्वमतमंडन।
सूरि श्रीहर्ष का प्रबल खंडन ॥३४॥
आज भी है अजस्र काम आता।
है जगत में प्रकाश फैलाता ॥३५॥
यह सभी है विभूति विद्या की।
है उसी की सुकीर्ति यह बांकी ॥३६॥
माघ भवभूति का सुधा वर्षण।
भारवी का अपूर्व संभाषण ॥३७॥
यह सदाही श्रवण कराती है।

दिव्य फल कंठता दिखाती है ॥३८॥
हैं जननि के समान यह ढरती।
है पिता के समान हित करती ॥३६॥
है तरुणि केलिकाज बन जाती।
कीर्ति को है दिगन्त फैलाती ॥४०॥
यह निधन के लिये महा धन है।
दुष्टजन के लिये सुशासन है ॥४१॥
है निबल के लिये अनूपम बल।
है समुद्योग का समुत्तम फल ॥४२॥
है बिमल तेज तेजहीनों को।
रत्न की मंजु खानि दीनों को ॥४३॥
है जरा ग्रस्त के लिये लकुटी।
व्यग्र उद्विग्न काज शांति कुटी।
यह बिपत में बिराम दायिनी है।
क्लान्ति में मोद की विधायिनी है ॥४५॥
सहचरी है अनिन्द्य कर्म्मों में।
है व्यवस्था विशुद्ध धर्म्मों में ॥४६॥
यह निरवलम्ब का सहारा है।
तप्त हिय की सुबारिधारा है ॥४७॥
कालिमा की कलिन्दनन्दिनि है।
पाप के पुंज़ की निकन्दनि है ॥४८॥
है सुकोकिल समान कलबैनी।
हंस की भांति मंजु गुन ऐनी ॥४६॥

मोर के पच्छ लौं सुचित्रित है।
यंत्र की भांति यह नियंत्रित है ॥५०॥
मल्लिका है प्रफुल्ल मोद मई।
पल्लवित बेलि है प्रमोद छई ॥५१॥
है हृदयतम विनाशिनी सुप्रभा।
सद्विचारों की है विचित्र सभा ॥५२॥
है कला उक्ति युक्ति में ढाली।
है तुला बुद्धि तौलनेवाली ।५३॥
स्वर्ग की सैर यह कराती है।
मंजु अलकापुरी लखाती है ॥५४॥
है सजाती नवल जलदमाला।
है पिलाती पियूष का प्याला ॥५५॥
है सुनाती मधुर भ्रमरगूंजन।
पच्छि कुल का अलाप कल कूजन ॥५६॥
है दिखाती हरीभरी डाली।
फूल फल से लदी सुछबिवाली ॥५७॥
है जहाँ पर त्रिविध पवन बहती।
हैं जहाँ मत्त कोकिला रहती ॥५८॥
जो सदा सौरभित सुपुष्पित है।
जो सुक्रीड़ित वो मंजु मुखरित है ॥५९॥
इस तरह के अनेक उपबन में।
बाग में बाटिकान में बन में ॥६०॥
है हमें यह बिहार करवाती।

है छटा का रहस्य बतलाती ॥६१॥
स्वच्छ जलराशि मय सरोवर पर ।
हिम धवल कर प्रदीप्त गिरवर पर ॥६२।
यह हमें है सप्रेम लेजाती ।
है सुछबि का बिकाश दिखलाती ॥६३॥
बुद्धि जाती जहां न मन जाता ।
जो सदा है अचिन्त्य कहलाता ॥६४॥
जो न मिलता हमें विचारों से ।
हैं न पाते जिसे सहारों से ॥६५॥
है उसे भी यही लखा देती ।
थाह उस का है कुछ यही लेती ॥६६॥
बिश्व बिद्या करों बिशेष पला ।
है इसी से हुआ अशेष भला ॥६७॥
है अकथ वो असीम गुणमाला ।
है उसे कौन भाखनेवाला ॥६८॥
है यहां पर कहा गया जितना ।
वह अखिल के समीप है कितना ॥६९॥
कुछ नहीं है, महा अकिंचित कर ।
जिस तरह बूंद और रतनाकर ॥७०॥
इस लिये नेति नेति कहते हैं ।
मुग्ध होते हैं मौन गहते हैं ॥७१॥

—०—

सीसवर्णन ।

दोहा ।

मिलत निरखि या सीस ते, नव रस की बकसीस ।
सादर सीसनवाइ को, देत न सदा असीस ॥१॥
लखि सब सीस धुनत रहत, कहि सी सी, बसु जाम ।
याही ते तियसीस को, पर्‌यो 'सी' 'स' यह नाम ॥२॥
फूलि उठे दृग सखिन के, लखि छबि देत असीस ।
ह्वै सफूल दूनों फबत, सीस-फूल तियसीस ॥३॥
फूल कहूं फल कहुं लगत, यह बिपरीत महान ।
सीस-फूल सों देखिअत, सफल होत अँखिआन ॥४॥
सुरपुर बसतहुँ लेत यह, सुनासीर मन खेंच ।
परत सरा-सर-पेंच मैं, लखि तेरो सर-पेंच ॥५॥
करत रहत बन्दी सदा, करि कै मन को छाम ।
कहा याहि ते है पर्‌यो, बन्दी याको नाम ? ॥६॥

माँगवर्णन ।

दोहा ।

दृग दुहून की देखियत, बढ़त जात नित माँग ।
कहा माँगि नहिं सकत मन,-माँगन-वारी माँग ॥७॥
रूप धरे अपनो दिपत, अति अनूप अनुराग ।
सरस सिंदूरवती नहीं, यह युवती की माँग ॥८॥
मन आवत पाटीन मैं, सेत माँग तिय हेरि ।

तम बिदारि मानों कढ़ी, किरन तमीपति केरि ॥९॥
पारि देत मन पेंच मैं, रचि पेंचीले स्वांग।
नीकी मुकुतावलि बलित, गजगमनी की माँग ॥१०॥
लसत असित पाटीन मैं, नहिं अरुनारी माँग।
रससिंगार धारन करत, सरस धार अनुराग ॥११॥

पाटीबर्णन।

दोहा।

कबौं पटी नहिं काहु की, तिय पाटी के साथ।
याहि अटपटी मैं किते, पटकत पाटी माथ ॥१२॥
पढ़ि बिधि की पाटी कहत, जग परिपाटी काँहिं।
जो सुख पाटी सों पटे, पाट ठटे हूं नांहिं ॥१३॥

चोटीबर्णन।

दोहा।

दमन काज दम एक मैं, अदमनीय दुरदीठ।
काम चमोटी सी लसै, कामिनि चोटी पीठ ॥१४॥
चित को बिचलावत चलत, कुटिल चाल न लखात।
लखि बेनी ब्याकुल बनो, फिरत ब्याल बलखात ॥१५॥
कैसे कोऊ सहि सकै, बिख बेनी की ज्वाल।
बिवर बसेहूं नहिं भयो, गरल बिवरजित ब्याल ॥१६॥
बिख सों कछु चढ़िजात सुनि, या बेनी की बात।
लहर न आवत काहि लखि, नागिन सी लहरात ॥१७॥

बिख वाके काटे चढ़त, याके नेक लखात।
क्यों बेनी सी औगुनी, गिनी नागिनी जात ॥१८॥
आहि आहि करतहिं रहत, कैसे सकत सराहि।
लगत चोट चित चौगुनी, तिय तव चोटी चाहि ॥१६॥
का अजगुत की बात जो, मानवहिय हरखात।
सुमनसजी बेनी लखे, सुमनस-जीन अघात ॥२०॥
का अचरज आली कोऊ, जो कलपत अकुलाय।
काली चोटी लखि सकत, नहिं ब्याली कलपाय ॥२१॥
लखि बेनी कंपन लुठन, हिलन डुलन बलखान।
काला, मुँह काला कियो, लग्यो कला हूं खान ॥२२॥

जूराबर्णन।

दोहा।

पूरा पूरा नहिं मिलत, जऊ अजूरा वाहि।
बनो मजूरा मन फिरत, तिय तव जूरा चाहि ॥२३॥
पूरा बिखधर फन दियो, बिख कूरा बतराय।
मन अजान तब हूं जुरा, वा जूरा सों जाय ॥२४॥
तव जूरा को भेद तिय, समुझ परत कछु नांहिं।
है छटाँकभर हूं न पै, मन बाँधत छन माँहिं ॥२५॥
जूरा बाँधन मैं कछू, साधन और लखात।
कहूँ बँधनवारो न मन, जहँ बरबस बँधिजात ॥२६॥
पीछूं बँधि जूरा हिये· यहै दृढ़ावत बात।
जो याके पीछे परत, सो पीछें पछतात ॥२७॥

अलकबर्णन ।

दोहा ।

भ्रमत इनैं न बिलोकियत, बन बागन गुंजारि ।
अलि कुल अकुलाने फिरत, अलकावली निहारि ॥२८॥
पल पल ललकत ही रहैं, लालन लोयन दोय ।
लखे आलुलायित अलक, लालायित चित होय ॥ २९ ॥
कैसे कोउ मानव सके, निज मन नैनन रोकि ।
अलकावारे हूं फँसत, अलकावलि अवलोकि ॥३०॥
पगि सनेह ठगि लेहिं मन, देहिं जाल मैं गेरि ।
करै कुटिलता क्यों नहीं, कुटिल अलकतिय केरि ॥३१॥
ए नैना ललकन लगे, पल पल पलक न टार ।
तेरे कल अलकन चितै, जलकन केरि बहार ॥३२॥
बँधत अरुझत ही रहत, मिटत न मन को दंद ।
जो छोर्यो जूरा पर्यो, अलकावलि के फंद ॥३३॥
पान काल जब चूकि कै, लट ब्यालिनि बलखात ।
जलकन मिस मुख ससिसुधा, बूंद बूंद खसि जात ॥३४॥
लार बहावत ब्यालिनी, मुख मयंक मधु हेत ।
टपकत अलकन ते न अलि, यह जलकन छबि देत ॥३५॥
नेक नहीं मेरी सुनत, हारि परे हम टेरि ।
एरी क्यों लटजात मन, यह तेरी लट हेरि ॥३६॥
गति मन नैनन की निरखि, मति बतरावति मोहि ।
ए जुल मैं परिजात हैं, जुलमी जुलफन जोहि ॥३७

केसबर्णन।

दोहा।

बरबस अरुझि पर्यो जऊ, रहे मनहिं बहु रोकि।
नेक संकुचित नहिं भयो, कुंचित केस बिलोकि ॥३८॥
छहरत छाये छवा लौं, छंद छगूने धार।
प्यारे प्यारे छरहरे, छबिवारे ए बार ॥३९॥
कारे कारे चीकने, सने सनेह सुदेस।
मो अटकाये लेत मन, ए लटकाये केस ॥४०॥
बिन बूझे सरबर करत, तू बावरी बयार।
बिगरेहूं बनतहिं रहत, ए बगरे बर बार ॥४१॥
किधौं तार मखतूल ए, कै सुखमूल सेवार।
कै प्यारे प्यारे तेरे, सुथरे कारे बार ॥४२॥
मेरे मन आवत निरखि, कामिनी तेरे बार।
दीप-सिखा-मुख ते कढ़त, काजर की यह धार ॥४३॥
कै सांपिनिसिसून को, गहि आन्यो मुरवान।
किधौं छरहरे केस ये, छहरत छये छवान ॥४४॥
बगरे ए न बिलोकियत, मेचक चिकुर अथोर।
कढ़ि कलंक ए कत भयो, मुख मयंक दुहुँ ओर ॥४५॥
मो चित कछु एतनो चहत, उठत उमाहि उमाहि।
ए तेरे रुचिकर रुचिर, रचे चिकुर तिय चाहि ॥४६॥
गुलुफ गुलाब प्रसून दिसि, कै सिसून अहि जाहिं।
कै छबिवारे बार ए, छये छवा छहराहिं ॥४७॥

भालबर्णन ।

दोहा ।

बिरचन में जाके चले, बिधिहुं निराली चाल ।
निरखि भाल भूले मनहिं, कैसे सकहिं सँभाल ॥४८॥
लखनहार लखतहिं रहत, सकत न लोयन टार ।
तेरो नवलीला बलित, लसत सुललित लिलार ॥४९॥
के सिंदूर को बिन्दु यह, बाल भाल दरसात ।
लालक नीलपटी किधौं, हीरकपटी लखात ॥५०॥
जके थके निरखत रहे, सके न बूझि बिचार ।
पारत रसिकन पेच में, परि कै सिकन लिलार ॥५१॥
नवल बाल के भाल पै, कै बल परो लखाय ।
कै दरपन तल पै परी, लहर लरी दरसाय ॥५२॥
रवि किरनन ते मनिसरिस, गहत जोति मन लाल ।
चमकीली बिंदुली लखे, अली लली के भाल ॥५३॥
बाल भाल ऊंचो लसै, किधौं समूचो चैन ।
छटा अटा कै यह पटा, मंजु चौहटा मैन ॥५४॥
साल होत सौतिन हिये, मनहूं सम्हलि सकैन ।
तिय तव भाल बिसाल की, लखि बिसालता नैन ॥५५॥

भौंहबर्णन ।

दोहा ।

कहा करैं अनुमान किमि, कही न मानत मोर ।
मुरत न मोरे मन परयो, भामिनि भौंह मरोर ॥५६॥

भामिनि भौंह बिलोकियत, बिगरत बनत सबेग ।
गजब गुजारत कौन पै, यह गुजराती तेग ॥५७॥
बिन गुन बिसिख बिलोकियत, बीरन करत अमान ।
कहैं क्यों न हम कामिनी, भौंहन कामकमान ॥५८॥
बीर बूझियत भौंह को, बंकिम झुकी बिलोकि ।
चली जाति अलि की अवलि, नैन कमल अवलोकि ॥५९॥
कैसी तिय भौंहन अरी, परी गिरह यह आहि ।
काढ़नवारे बाल की, खालन खोलत जाहि ॥६०॥
बंक पाँति बिधि कर लिखी, बिबिध भाव आधार ।
को बिचार भौंहन करै, बिना भये मुख चार ॥६१॥
जन मन नैनन को हरति, मति गति करति अपंग ।
बंक भृकुटि की बंकता, मिली कुटिलता संग ॥६२॥

नेत्रवर्णन ।

दोहा ।

चैन देनवारे सरस, ऐन मैन बरनीय ।
क्यों न रमै मन रमनि के, निरखि नैन रमनीय ॥६३॥
कछु आँखिन ऐसो छरयो, अरी मछरियन कांहिं ।
लखत बावरी सी बनी, फिरत बावरी मांहिं ॥६४॥
कुसुमन की बरखा करत, कुसुमसरहु के हीय ।
कामिनि ए तेरे नयन, कुसुम सरिस कमनीय ॥६५॥
निसि दिन रसहू में बसे, लह्यो न सो रस मीन ।
जो रस इन अँखिआन को, बरबस बिधना दीन ॥६६॥

याही ते बन में बसे, खंज बनज मृग मीन।
कछु अनबनहीं सी रही, अँखिअन सों निबही न ॥६७॥
करि सैनन उपजावहीं, मैनहुँ के मन मैन।
एनी नैनी के नये, नीके ए दोउ नैन ॥६८॥
होत वहां हूं थिर नहीं, जहँ पानी की खान।
इतनो बेपानिय कियो, मछरिन को अँखिआन।६६॥
दृगन लजे मीनन लखत, इत उत दौरत नांहिं।
डूबन को ढूंढ़त फिरत, ए अगाध जल कांहिं।७०॥
नेक न थिरता गहन की, है खंजन की बान।
काको नहिं चंचल करैं, ए चंचल अँखिआन ॥७१॥
कढ़त न काढ़े कैसहूं, किये जतन दिन रैन।
कछु चित में ऐसे गड़े, बड़े बड़े ए नैन ॥७२॥
चखन हाथ पानी गये, भई झखन अस दाह।
कटे मरमिटेहूं रही, पानी ही की चाह ॥७३
चंचल खंजन मीन से, कंजन से कमनीय।
मृग दृग से भोरे भले, सुफल फले दृग तीय ॥७४॥
लखे लुनाई दृगन की, लाजि भजे से आहिं।
खंजन गगन बिपिन मृगन, झख कंजनबन मांहिं ॥७२॥
का अजगुत अवलोकियत, लगे दृगन सर पीन।
तरफरात खंजन फिरत, फरफरात सफरीन ॥७६॥
काको रँग बिगरत नहीं, लखि बदले दृग रंग।
भये सुरंगहुँ मृगन को, कबिगन कहत कुरंग ॥७७॥
जितनो तिरछे ह्वै चलैं तितनों करैं निहाल।

इतनो लोच न क्यों रखैं, ए तव लोचन बाल ॥७८॥
काहि न ए अपनावहीं, इन को कौन अहैन ।
सकैं कहा ए करि नहीं, बाम तिहारे नैन ॥७९॥
कौन मसाले से बने, देखे भाले हैन ।
रस के प्याले से लसैं, निपट निराले नैन ॥८०॥
नीति निपुन नागर परम, रसगागर मुदश्रैन ।
सागर सील सनेह के, सब गुन आगर नैन ॥८१॥
सरबस चितयेहूं सहज, रसिकन को दैजात ।
लोचन नाम भयेहुँ क्यों, इतनो लोच लखात ॥८२॥
लखनहार तन मन दृगन, असन सयन सुख चैन ।
बरबस निज बस मैं करहिं, ए रस बरसत नैन ॥८३॥

नेत्रलालीवर्णन ।

दोहा ।

लाल लाल डोरे परे, कै अँखियान मँझार ।
सुधा सरोवर मैं लसै, कै अनुराग सेवार ॥८४॥
किधौं कलित कोयन रही, लोयन लाली राजि ।
अरुन राग रंजित किधौं, ऊखा रही बिराजि ॥८५॥
लहू बहावत देखिअत, अबलौं अँखिअन काहिं ।
आली यह लाली नहीं, लहू लग्यो तन मांहिं ॥८६॥

पूतरीवर्णन ।

दोहा ।

लोयन कोयन मैं अरी, असित पूतरी नांहिं ।

कारे नग ए जगमगत, रतनारे नग मांहिं ॥८७॥
ललना लोयन मैं न यह, पुतरी लसत असेत।
अतसी की पखुरी बसी, कमलदलनछबि देत॥८८॥
कारी कारी पूतरी, प्यारी अँखिअन मांहिं।
मानिक रंजित रजत मैं, मरकत राजत नांहिं॥८९॥
बाल बिलोचन मैं न यह, पुतरी असित बिभात।
अरुन रागजुत सित गगन, मैं राजत रबितात॥९०॥

अंजनरेखवर्णन।

दोहा।

अंजनलीक अलीक कहि, कत बहरावत मोहि।
मृग दृग प्यारी पै रही, कारी धारी सोहि॥९१॥
कै अंजन की रेख लखि, अँखिअन होत बिनोद।
सोवत खंजन सिसु परो, कै खंजन की गोद॥
कहि अंजन की रेख कत, कबिजन बनत अजान।
बरबस काहू सों बिगरि, बिख उगिलत अँखियान॥९३॥
बिना सुधाहूं नहिं सधत, बिखहू बिना बनैन।
का सों काज रखैं न ए, काजरवारे नैन॥९४॥
काजररेख रखै न जी, जारनवारी आंख।
काहु जी-जरे के जरै, जी की है यह राख॥९५॥

पलकवर्णन।

दोहा।

अदलि बदलि बाटन दृगन, अनुमानत निज मान।
पल पल तुलत मनहिं लखत, पलकन के पलरान॥९६॥

पलकन में अवलोकियत, लोयन कोयन नांहिं।
रस सिंगार सफरी अरी, मैन भेक मुख मांहिं ॥९७॥
पलपल उठहिं गिरहिं परहिं, थिरता भूलि गहैन।
नैनन के ललकन परत, पलकनहूं नहिं चैन ॥९८॥
इन बिगरी अँखियान को, बस में राखन चाहि।
प्यारी पलकन मिस लगी, मदनकिवारी आहि ॥९९॥

बरुनीबर्णन।

दोहा।

अनलगेहुँ अनगन जनन, अकुलावति चहुँओक।
बरुनीकी बरछी अनी, नहिं बरुनी की नोक ॥१००॥
कै सिंगार चांटे जुरे, कै बरुनी बिविनैन।
कै कमलन कांटे लगे, कै ए सांटे मैन ॥१०१॥
अरी चुभावत कत रहत, सूची मोहिय मांहिं।
वाम तिहारी बरुनि को, बरु निहारिहौं नांहिं ॥१०२॥
सूची बरुनी तरुनि में, जोरे डोरे नैन।
दरजी मैन सिअत रहत, प्रेम बसन दिन रैन ॥१०२
बरुनी बरनन मैं करत, कत इतनों चित गौर।
जगविजयिनि अंखियान पै, ढुरत देखिअत चौर ॥१०४
बरुनीवारी पलक में, अंखिया न्यारी नांहिं।
खंजन के जोरे परे, मैन पींजरे मांहिं ॥१०५॥
बेधन को सूधी भई, नाहक सदा लखाय।
बरिआई बरुनीन की, अरी न बरनी जाय ॥१०६

नेत्रतिलबर्णन।

दोहा।

तज बिहीन बिलोकियत, मलिन रूप औ रंग।
ए तिल कैसे तुलि सकै, नैन तिलन के संग॥१०७॥
करामात दृग तिलन की, तिल भर कही न जात।
अविकल जामें सकल जग, जल थल सहित समात॥१०८
जगत तमोमय दुहुंन बिन, निरखि होत अनुमान।
अनगन ए तारे गगन, तारे दृगन समान॥१०९॥
बिख उगिलत बिगरत लरत, बंक चलत गहि मान।
कहा एक तिल पै करत, इतनो नैन गुमान॥११०॥
चाल निराली दृगन की, बूझि परत कछु नांहिं।
कैसे ए तिल एक सों, लेहिं तौलि मन कांहिं॥१११॥

दृगकोरवर्णन।

दोहा।

कित इन की गति है नहीं, कहां न इन को जोर।
काके हिय मैं नहिं गड़े, ए बांके दृगकोर॥११२॥
नासा ढिग दृगकोर लखि, तुरत लियो चित सोच।
खीजि चलायो कीर पै, खंजन अपनी चोंच॥११३॥
मोलजोल कीने बिना, लै अमोल मन मोर।
चाहत कहा अकोर अब, ए तेरे दृगकोर॥११४॥
रहि रहि कसकतही रहत, कीनेहुँ जतन करोर।
कढ़त न काढ़े कैसहूं, इन अंखिअन की कोर॥११५॥

कीनेहूं सुजतन करत, बिखमय तन मन प्रान ।
सबिख बिसिखं गांसीन सी, गड़ी कोर अंखिआन ॥११६॥

चितवनबर्णन ।

दोहा ।

बार बार बिगरत रहत, बूझि परत नहिं गाथ ।
क्यों चित बनत न देखिअत, तिय चितवन के साथ ॥११७॥
तियचितवन पै रोस कत, चित इतनो दरसाय ।
क्यों न कटीले दृगन कढ़ि, करै कंटकित काय ॥११८॥
निपट चंचला भये मन, तजत न अपनो गौन ।
उचित न एती आतुरी, लखि चातुरी चितौन ॥११६॥
गौन करति चोरनसरिस, मंदमंद हियभौन ।
चितचोरनवारी अरी, तेरी चारु चितौन ॥१२०॥
किये कटीले कमल औ, मीनन के उपमान ।
निपट कटीली ह्वै गई, कामिनि की अँखिआन ॥१२१॥
कछू निराली चाल चलि, बोलेहुँ बिना सईठ ।
काम बसीठी सी करति, यह कामिनि की डीठ ॥१२२॥
सरस कमल नैनन कढी, निपट रसमई नीठ ।
काजर के परसे भई, गरलमई यह डीठ ॥१२३॥
सगी सरसता की रँगी, मनमथं रंग मजीठ ।
रति की प्यारी सहचरी, अति अनियारी डीठ ॥१२४॥
बंक बिलोकन बाम लखि, मो चित होत उचाट ।
करति अहै तरवार की, तिरछी वारहिं काट ॥१२५॥

देह गेह की सुधि विबस, को नहिं देत बिसारि ।
एरी यह जादू भरी, तेरी नजर निहारि ॥१२६॥
समर सामुहे देखिअत, सूरमाहुं की पीठ ।
कान कामिनी की करै, बंकगामिनी डीठ ॥१२७॥

नासिकाबर्णन ।

दोहा ।

तीकी चल अँखियान मध, नीकी नाक लखाय ।
रारी खंजन बीच मैं, कीर परयो कै आय ॥१२८॥
नेसुक सिकुरत नाक लखि, परत सांकरे आन ।
नाक निवासिन को रहत, सदा नाक मैं प्रान ॥१२९॥
निज बिसरी सुधिहू सकत, क्योंहू नाहि सम्हारि ।
कीरति कीर बिनासिका, छबि नासिका निहारि ॥१३०॥
रूप नासिका सों मिलत, पै न गंध अनुकूल ।
तुलना करि तिलफूल सों, कबिकुल कीजत भूल ॥१३१॥
करिकै मधुपूरित हियो, नहिं अपनावति काहि ।
गंध गाहिनी नासिका, मन उमाहिनी आहि ॥१३२॥
या तियनथ की बात कछु, कहत बनत है नांहिं ।
मुकुत मिलेहू देखिअत, फँसी नासिका मांहिं ॥१३३॥
मिलेहु टँगीसी देखियत, दुहुँ दिसि दोऊ भौंह ।
को ना साँसत सहत परि, या नासा के सौंह ॥१३४॥
छिद्र नाक बर बरनि मैं, नथ राजत है नांहिं ।
सुबरन कांहि बिलोकियत, परो सांकरे मांहिं ॥१३५॥

निधरक जन सौंहैं रहत, चूमत अधर रसाल।
बेसर-मोती कत चलत, बेसरमों की चाल ॥१३६॥
करै बिबस बरबस, परै, निसिबासर नहिं चैन।
बिसरायेहु बिसासिनी, यह बेसर बिसरैन ॥१३७॥
करि सरबर राखत सदा, बेसर सों रसरीति।
को ना साकी है लखे, नासा की यह नीति ॥१३८॥
काहू को न बिलोकियत, याकी करत सबील।
काकी नहिं कीलत अकिल, या नासा की कील ॥१३९॥
री नासा सांची कहै, हौं यह पूछत बात।
क्यों दरसाय कीलहूं, यों तरसाये जात ॥१४०॥
पूरो पूरो होत है, जा में सुर परिपाक।
मैन तानपूरे लसैं, कै ए पूरे नाक ॥१४१॥
कै तियनासा के लसैं, ए पूरे सुखरास।
किधौं सुबास बिलास के, हैं ए मंजु मवास ॥१४२॥
मन आवत पूरे सहित, निरखि नासिका नैन।
घुमरी की आधार सी, है यह तुमरी मैन ॥१४३॥
नहिं केवल नथ कामिनिहिं, ऐसो भयो सुपास।
को मुकतन को संग करि, लहत न नाक निवास ॥१४४॥
बर बरनी की नाक मैं, नथ सुबरन की नांहिं।
करि हलका गोपन कियो, निज हलकापन काँहिं ॥१४५॥
तजि ममता निज बरन की, मल परिहरि तन दाहि।
करि मुकतन को संग नथ, नाक बिराजत आहि ॥१४६॥

कानबर्णन ।

दोहा ।

बुरो कहै कोऊ किधौं, करत रहै गुनगान ।
काम कान से परतही, छुटी कान की बान ॥१४७॥
नाँहिं ससंकित सीपही, अहै बने उपमान ।
का, न, करत लखि कान को, काहि न परत सकान ॥१४८॥
बिधत कटुबयनहूं सुनत, अनुरागत लहि तान ।
सबै करावत कान की, का, न, करन की बान ॥१४९॥
कहा भयो अपवाद जो, बाद करत सब कोय ।
अहै प्रसंसित मत यही, स्रुतिसंमत मति होय ॥१५०॥
भूखित भूखनभाव सों, जो भुव महिं दरसाहिं ।
कहा भयो भावुक भये, जो स्रुति भावहिं नांहिं ॥१५१॥
करनबिवर कामिनि निरखि, मन अनुमानत मोर ।
सुरुचिर सेंध बिरचि धँस्यो, मधुर नाद चितचोर ॥१५२॥
चहत भुलायो पै कबौं, क्योंहू भूलत नांहिं ।
लगी रहै दिन रैन लौ, कानन के लौ मांहिं ॥१५३॥
बड़े बड़े मुकतन कियो, निज बस मैं हठ ठानि ।
बसीकरन की बानि अस, बसीकरन मैं आनि ॥१५४॥
मुकतन हू को है जहां, निवसन को अधिकार ।
कानन गये कहा, रखत, जब कानन सों प्यार ॥१५५॥
लोक बेद बिपरीत यह, रीत जकत चित जोय ।
स्रुतिसेवी मुकतन लखे, अतन उदै तन होय ॥१५६॥

सिद्ध पीठ से मैन के, ए दोउ सौन सुहाहिं।
बाला को सेवत लखत, जहँ मुकतनहूं कांहिं ॥१५७॥
तौ बिसरावन काज हम, जतन कियो नहिं कौन।
सांची कहौ तरौन क्यों, मो चित ते उतरौन ॥१५८॥
कहा बहाला देत मोहि, कहत कहा बहु घेरि।
को, न, कबाला करत मन, काननबाला हेरि ॥१५९॥
जो बरनत नहिं बनत तो, क्यों करि रहत न मौन।
कहा जानि श्रुतिसेवकन, कबिगन कहत तरौ-न ॥१६०॥
सुबरन के भूखन लसैं, सुबरनही की गोद।
बाला को बाला लखे, होत दुबाला मोद ॥१६१॥
उदबेगन दिवसेस की, उठत दीठि उपरौन।
तिय तरौन को तेज लखि, ताकत बनत तरौ-न ॥१६२॥
अति सूछम परमानु से, मनहूं माहिं समात।
बारीकी मो सों न या, बारी-की कहि जात ॥१६३॥
बारी बारी हौं बिबस, कितने किये उपाय।
बारी के पेचन परी, मति न उबारी जाय ॥१६४॥
कानन मैं बारी कहूं, सुन्यो बिलोक्यो नांहिं।
कितनी बारी देखियत, पै तिय कानन मांहिं ॥१६५॥
कै कानन ते कढ़न हित, पल पल अति अकुलात।
बारी बारी कान में, कै बारी हिलि जात ॥१६६॥
प्यारी प्यारी छबिसनी, सुबरनवारी जोय।
बारी पै वारी भई, मति मतवारी होय ॥१६७॥
कोउ याके मुख में दियो, यह कैसो मद गेरि।

मन मेरो झूमन लग्यो, झूमक झूमन हेरि ॥१६८॥
बहुत बिचारे हूं करति, मेरी मति नहिं काम।
झूमि कहा कासों कहैं, ए झूमक अभिराम ॥१६९॥
हैं न कंज-कल-नैनि के, ए झूमक छबिरास।
अपत होइ कमलन लियो, कानन मांहिं निवास ॥१७०॥
कत कोऊ बूझै बिना, काहू को पतियात।
लखे पात उतपात है, पात पात मन जात ॥१७१॥
मनमंदिर हिं सलाकजुत, कीबो उचित जनात।
यह कानन की बीजुरी, करत महा उतपात ॥१७२॥
सुरुचिर स्रौनन के लखे, चकाचौंध लगि जात।
तहां दीठि काकी जुरी, जहां बीजुरी पात ॥१७३॥
भावैं बाद करै कोऊ, भावैं करै कबूल।
भूल जात काको न मन, लखि कानन कनफूल ॥१७४॥
इक द्वै फूलन कन रचित, कहि कींजत चित भूल।
इन कनफूलन को रच्यो, लै कितने कनफूल ॥१७५॥

कपोलवर्णन।

दोहा।

काको नहिं बेलमावहीं, काहि न करहिं निहाल।
ए गुलाब के फूल से, गरबीली के गाल ॥१७६॥
वा कपोल को है बलित, ललित लालिमा जौन।
माखन को गोला कहे, माखन न मानत कौन ॥१७७॥
अनगन जनमन को करैं, अनुरंजन सब काल।
भोरे भोरे भावजुत, गोरे गोरे गाल ॥१७८॥

कल कौसल करि नहिं करैं, का कौ-सल मन प्रान।
गोल गोल ए गाल कहि, गोल गोल बतिआन ॥१७९॥
बरजोरे कत जो रहत, मन मोरे सब काल।
गोरे गोरे ए गरल, भरे निगोरे गाल ॥१८०॥
गोरे गोरे चीकने, अमल अनूप अमोल।
मो चित बिचलित होत लखि, लोने ललित कपोल ॥१८१॥
कछु अनखुन करि नहिं चलैं, अँखिअनहीं सों चाल।
गालिब का पै होत नहिं, गहब गुलाबी गाल ॥१८२॥
मदन महीपति की परै, अमदन दीठि अमोल।
लहियत लाखन की खिलन, यां लखि खिलत कपोल ॥१८३॥
सपरत कछु न परत बनत, लोयन भये अडोल।
पलक-पोल पल मैं खुलत, पुलकित पाइ कपोल ॥१८४॥
अमल ताहि को नहिं कियो, अमल कपोलन चेरि।
दरप नसावत देखिअत, दुति दरपनहूं केरि ॥१८५॥
लखि वा अमल कपोल को, क्यों न काँच सकुचाय।
जेहि सौंहैं मुँह करन में, मुकर मुकुरहूं जाय ॥१८६॥
नैनतिलन को देखियत, स्रवत बारि सब काल।
तिलहिं बनावत तालतिय, सतिल तिहारो गाल ॥१८७॥

शोकाश्रु ।

सुहृद वर श्रीयुत पण्डित प्रतापनारायण मिश्र की मृत्युसम्बन्धिनी कविता ।

रोला छन्द ।

अहह आज क्यों सिहरि सिहरि हियरो दुख पावत ।
कहा आज आँखिन में अँसुआ भरि भरि आवत ॥
क्यों उचाट है भयोन लागत मन कहुं मेरो ।
क्यों असारता जगत केरि हिय लेत बसेरो ॥
निसा मांहिं नभ उदय होइ बहु रस बरसाई ।
प्रमुदित कै मन प्रान सुसीतलता सरसाई ॥
जग अपनो करिलेत सोई निसिनायक प्यारो ।
सिगरो तेज गँवाइ प्रात बनि जात बिचारो ॥
थोरे ही दिन चढ़े सोऊ ससि नहिं दरसावै ।
या अनन्त आकास के उदर मांहिं समावै ॥
काल पाइ कै कबौं होत घटना जो ऐसी ।
तो जगजीवन कांहिं बेदना होत सुकैसी ॥
पै ऐसी नित किती होत घटना जग मांहीं ।
याते इन को हेरि होत अब अस दुख नाहीं ॥
या कारन ते समझि परत मोको यह नीके ।
दुख के हेत न अहैं ए सबै मेरे ही के ॥
कोऊ कारन और अहै जाते अकुलाई ।

लहत न है जिय चैन मोद जनु गयो हेराई ॥
आह ! कहा सुनिपर्‍यो रहहु पकरन हिय देहू ।
कहा कहत ठहरहु जनि हमरो जीवन लेहू ॥
हाय हायरे हाय कही तुम कैसी बानी ।
गलि गलि जाते अहै होत हमरो हिय पानी ॥
कहा कह्यो ? परताप मिश्र सों भारत प्यारो ।
पर्‍यो काल की गाल भयो चहुं दिस अँधियारो ? ॥
हाय ! समुझि अब पर्‍यो अचानक दुख को हेतू ।
त्राहि त्राहि का भयो गयो कहँ द्विजकुलकेतू ॥
हाय ! हमारे परम प्रेमभाजन हितवारे ।
हाय ! रसिक सिरमौर कबिन के प्रानपियारे ।
हाय ! सील के सिंधु हाय नेहिन हितकारी ॥
हाय ! दीन औ दुखियन के साँचे उपकारी ।
हा ! हिन्दी के हेत प्रान धन बारनवारे ॥
हा ! भाषा की बेलि सींचि सरसावनहारे ।
हा ! सुमधुर लिखि गद्य पद्य हिय मोद बिधायक ॥
हा ! सुललित करि काव्य बिबुध जनगन सुखदायक ।
हाय ! सनातन हिन्दूमत के सांचे प्रेमी ॥
हाय ! देव आराधनादि के निसचल नेमी ।
हा ! भारत की दीन हीन गति के वर ज्ञाता ॥
हाय ! देस की गिरी दसा के धीरजदाता ।
हा ! हिन्दी साहित्यकाज निसदिन स्रमकारी ॥
हाय ! सब्द की काटछांट के बर अधिकारी ।

हाय ! नागरप्रेमिन के हिय सों अनुरागी ॥
हाय ! मान मरजाद काज पदहूं के त्यागी।
हा ! प्रसिद्ध अति ललितपत्र ब्राह्मणसम्पादक ॥
हा ! बँगला सों राजसिंह आदिक अनुबादक।
हाय ! सु "मन की लहर" "प्रेमपुष्पावलि" करता।
हाय ! मधुर कहि बैन कलुख हियरे के हरता ॥
हाय ! देस के दसा सुधारन के अभिलाखी।
हाय ! दीनजनहूं सों आदर करि मृदुभाखी ॥
हाय ! दया के भौन हाय करुना के सागर।
हाय ! हिये की गति जानन में अतिही आगर ॥
यह देखहु कोमल सुहावनी नारि तिहारी।
कहत हुते तुम जाहि प्रेम सों प्रानपियारी ॥
मधुर मधुर कहि बैन सदा जाको अपनायो।
अति अचैन ह्वै गये तासु मुख जब कुम्हलायो ॥
लखि तव आनन ओर रही जीवन जो धारत।
नेसुक अन्तर भये होत जाको जिय आरत ॥
जो तुमरे हित मात पिता अपनो कुल त्याग्यो।
तुम को हंसत निहारि रहत जाको दुख भाग्यो ॥
लगि तुमरे हिय मांहि स्वर्गसुख जो लघु जान्यो।
तुमरे बैनन कांहिं अमिय लौं जो अनुमान्यो ॥
तुमरे तजि आधार अहै जाको कोउ नाहीं।
संतानहुँ कोउ है न दूख जाते नसि जाहीं ॥
ताही की गति हाय आज ऐसी हम हेरत।

छटपटाति महि परी प्रानपति कहि कहि टेरत ॥
बसन मलिन ह्वै गयो अहै भूखन सुधि नाहीं।
बगराये सब केस सीस पटकत महि मांहीं ॥
सूखि गयो मुख ढरत नैन सों आँसुनधारा।
रकत स्रवत है फूटि फूटि कै अँखियन तारा ॥
दरकि दरकि हिय मांहिं होत है पीर घनेरी।
प्रान कढ़न में परत जानि कछु अहै न देरी ॥
पै तुम ताकी ओर भूलिहूं नाहिं निहारत।
दुखमोचन हित एक बात मुख सों न उचारत ॥
यह तुमरे सब मीत जिनहिं लखि बहु सुख पायो।
आइ जाइ सनमानि प्रीति जिन सों उपजायो ॥
कहि कहि मीठे बैन जिनैं नित प्रमुदित कीनो।
बहु आमोद प्रमोद मांहिं जिन को सँग दीनो ॥
रोअत दुख सों खरे बसन आँसुन मैं बोरत।
पै तिनहूं सों हाय! आज तुम दीठ न जोरत ॥
अहह कहत दुख होत महा हिय दरकन लागै।
दुसह दूख संताप सोक हियरे मैं जागै ॥
अति दुखारिनी खीनमना हिन्दी गुनवारी।
जाकी लखि कै दसा दृगन भरि आवत बारी ॥
जाकी उन्नति काज बहुत तुम जतन बिचार्‌यो।
नये नये लिखि लेख जाहि तुम बहुत सुधार्‌यो ॥
रचि कबिता रसमयी जाहि तुम भूखित कीना।
करि रचना अति सरस जाहि बहु जस तुम दीना ॥

नित जाही को ध्यान रह्यो तुमरे हिय मांहीं।
रोग ग्रसेहूं तजत हुते जाको तुम नांहीं॥
अपने थोरेहुँ आय मांहिं जाके हित प्यारे।
बहुत खरच तुम कियो तबहुं नहिं भये सुखारे॥
सोचि सोचि कै दीनदसा जाकी दुख पाई।
निज अँखियन सों देत हुते अँसुअन झरलाई॥
कै बावरे समान बकन लागत हे कबहूं।
पै सीतल नहि होत हुतो तुमरो हिय तबहूं॥
जाके हित की बात कान मैं परतहिं फूली।
अपनी देहदसाहुं कांहिं जाते तुम भूली॥
भारतेन्दु के अस्त भये तुमरो मुख देखे।
जो निज जीवन रखत हुती कैसहुँ अवसेखे॥
हाय सोई नागरी आज कलपति दुख पाई।
रोम रोम पैं है मलीनता ताके छाई॥
जाकी दसा निहारि अरिहुं की दरकति छाती।
जाके मुख सों कढ़ति साँस प्रति छन है ताती॥
सोई नागरी बिलखि लखत तव आनन कांहीं।
हाय! कहा ह्वै गयो कहो बोलत क्यों नांहीं॥
यह ग्राहकमण्डली सदा जासों हित राख्यो।
यह सु रसिकगन मधुर काव्य तव रस जिन चाख्यो॥
जिन को लिखि लिखि सरस लेख तुम बहुत लुभायो।
करि कबिता रसभरी सुधा जिन को तुम प्यायो॥
कौसल मय आसय अनेक लिखि मन हरिलीनो।

करिकै जुगुत अनूप चकित जिन को तुम कीनो ॥
वेई आँखिन भरे बारि बिलखत मनमारे।
पै तिनहूं सों आज कछू तुम कहत न प्यारे॥
अबहीं वा दिन प्रेमभरी पतिया लिखि भेजी।
फिर बीचहिं तुम करी हाय कैसी यह तेजी॥
मम बिरचित प्रद्युम्नबिजय को बहुत बखान्यो।
लखन रुकमिनी परिनय हित अतिही सुख मान्यो॥
सोई छपि कै आज अहै मेरे ढिग आई।
कैसे तुम लखि सकत देहु सोइ जतन बताई॥
हाय! हौस ही रही हमारे हियरे मांहीं।
दरसावन हित तुमहि रुकमिनी परिनय कांहीं॥
लखहु तात किन आइ तुमहिं ताको दरसावहिं।
तुमरे अरु अपने हिय की यह आस पुजावहिं॥
अरे निरदई काल कहा अजगुत यह कीनो।
जो ऐसो अति असह दूख रसिकन को दीनो॥
कहा सुकोमल कलित बेलि हीं की जड़ काटी।
कहा मनोहर सरस रूखही कांहिं उपाटी॥
कहा अपूरब अमित दाम के रतनहिं फोरी।
कहा सुगन्धित सुरंग अनोखे सुमनहिं तोरी॥
तेरो हिय है सुखी होत रे कालकसाई॥
जो अकालही लेत महापुरुखन अपनाई।
बंकिम बाबू को बिनासि अबहीं दुख दीनों।
फिर बीचहि परताप मिश्र को क्यों हरिलीनो॥

कहा नहीं लै गयो हाय ! तू आज अचानक ॥
कितने को सरबस्व कितेकन को मनिमानक ।
बहुतन को प्रिय सुहृद अनेकन को अति प्यारो ।
कितने जन के नैन आँसु को पोंछनवारो ॥
बहु जन को आधार किते नर को उपकारक ।
कामिनि को सिन्दूर नागरी को हितकारक ॥
पै बिचलित नहिं भयो हाय ! तेरो हिय पापी ।
तिलभर हूं तोको दयालुता हाय ! न ब्यापी ॥
पाहन हू ते कठिन अहै तेरो हिय जानत ।
जो ऐसो अघ करत दूख मन मैं नहिं मानत ॥
हा ! हिन्दी नहिं जानि परत तव भाग खोटाई ।
समझि न मोकों परत कालगति की कुटिलाई ॥
उपजत नहिं दरसात कोऊ तेरो हितकारी ।
ऐसे अब कम होंहि जिनै लागै तू प्यारी ॥
पेटकाज सब लोग सिखहिं उरदू अँगरेजी ।
याते तिन मैं होत तिनहिं की ऐसी तेजी ॥
चाहत तेरी ओर लाज तिन को बहु लागत ।
हिय मैं पीर न तनिक होत तेरो हित त्यागत ॥
हम आँखिन है लख्यो ऐसहूं लोगन कांहीं ।
जो लखि हिन्दीलेख महा आकुल है जाहीं ॥
फारि फूरि कै तुरत देहिं ताको महिडारी ।
पै हिन्दूसन्तान होन के बर अधिकारी ॥
देसनिवासिन की गति ऐसी परत लखाई ।

दयाजोग सरकार को न तू परी जनाई।
ऐसे असमय मांहिं अहैं जो बचेबचाये॥
इने गिने द्वै चार हितू तेरो जस छाये।
तिनहूं को यह काल अकालहिं लेत उठाई॥
महा भयंकर हमैं परत परिनाम लखाई।
कोऊ नांहिं दिखात दरद यह मेटनवारो॥
गुनि गुनि कै बनि जात बावरो चित्त हमारो।
अबहीं तो भारतसुधार कछु होन न पायो॥
कलह फूट अरु बैर अहै चहुं दिस बहु छायो।
हित अनहित नहिं समझि सकहिं अँगरेजीवारे॥
पै संसोधन काज भये डोलहिं मतवारे।
जाहि न चाहत करन कबौं सरकार हमारी॥
ताहि करावन काज एक स्वर उठत पुकारी।
धनरच्छन की रीत देस बासिनहिं न आई॥
नव सिच्छित जन सके सिल्प को नहिं अपनाई।
दारिद दिन दिन बढ़त जात है भारत मांहीं॥
पै रोकन की अहै काहु को कछु सुधि नाहीं।
पढ़ि पढ़ि खोटे ग्रंथ नीच सों सिच्छा पाई॥
आरजसन्तति केरि होत है बहुत बुराई।
अपनो अपनो धरम छोरि कै सिगरी जाती॥
करि मनमानो करम सिरावति अपनी छाती।
रतन सतीपन छोरि त्यागि पति की सेवकाई॥
बहु स्वतंत्रता चहँहिं नारि लघु सिच्छा पाई।

ऐसी बाकी किती बात अजहूं हैं प्यारे।
फिर क्यों बिरद बिसारि हाय परलोक सिधारे॥
का इत सों उत अधिक करि सकत हो तुम जाई।
जो थोरेहि दिन मांहिं गये इतने अकुलाई॥
आजकाल हैं देसहितारथ के मदमाते।
कोट बूट पतलून धरे बहुजन दरसाते॥
ठोकि ठोकि के मेज मधुर अँगरेजी बोली।
कबौं भाखि गंभीर कबौं करि सरस ठिठोली॥
सकल सभासद केरि लेहिं हियरो अपनाई।
कबौं हँसाय खेलाय कबौं अँसुआन बहाई॥
कै लिखि लिखि कै देसहितैषी लेखन रूरे।
समाचार पत्रन के कितने कालम पूरे॥
नवसिच्छित जन के समाज मैं आदर पावत।
अँगरेजहुं को सरस पदन सों चकित बनावत॥
पै न देसहित अहै कछू इन लोगन मांहीं।
भेंट अहै वा बूँद सों अजों इन को नांहीं॥
इन की सब करतूति अहै केवल जसलागी।
जासों हम को कहहिं लोग भारत अनुरागी॥
कै भाखहिं है चढ़ी बढ़ी इन की अँगरेजी।
बोलचाल मैं लखहु करत हैं कैसी तेजी॥
कैसे कैसे लिखत अनोखे लेखन कांहीं।
बड़े बड़े अंगरेज लिखि सकत जैसो नांहीं॥
नतरु गहत जब कलम खरे कै होत सभा में

तो ऐसोई लिखत कहत कछु सार न जामैं ।
निन्दत अपनी रीत नीत चाहत अनहोनी ।
परै जाहि ते रही सही पति हूं सब खोनी ॥
उन के हिय को भाव सदा ऐसही जनावै ।
भारत की सब जाति एक जामैं ह्वै जावै ॥
आरजधरम नसाय रहै जरहू नहिं बाकी ।
सीखैं कोरी भांति भांति की लोग चलांकी ॥
लिखि पढ़ि खोटी नीति नारि बाहर कढ़ि कूदैं ।
तजैं लाज निज नैन पुरुख मूँदैं तो मूँदै ॥
खान पान को भेद न कछु कतहूं रहि जावै ।
चार चार करि खसम नारि निज जनम नसावै ॥
अहै गँवारन गीत बेद ताको सब छोरैं ।
रच्यो जाल ब्राह्मनन ताहि दलि मलि कै तोरैं ।
एक भाव मत जाति होंहिं सब भारतबासी ॥
कपट कुभावन के अनन्य सब होंहिं उपासी ।
जो इतनोहीं होत तो रह्यो अस दुख नांहीं ॥
उन की प्रीत न अहै देश की बस्तुहुँ मांहीं ।
इत को भूखन बसन भूलि उन को नहिं भावै ॥
इत को पुस्तक ग्रन्थ न उन को हियहुलसावै ।
इत की कारीगरी मैं न उन को मन लागै ।
इत की सिल्पहुं मैं न चित्त उन को अनुरागै ।
कहँ लौं भाखहुं नारि हूं न इत केरि सुहावै ॥
पै इतनो धन कहां जो न इत की तिय आवै ।

ऐसे ऐसे देसहितैषिन की गति हेरी।
तुमैं याद करि तात फटति छतिया है मेरी॥
कहत देसहित जाहि रह्यो ताको तुम जानत।
देसहितैषी अजों तुमैं सांचों सब मानत॥
अपने देसहिं के बने बसन तुम नित धार्‌यो।
देसी बस्तु प्रचार काज बहु जतन बिचार्‌यो॥
रीति नीति मरजाद धरम निज देसहिं मांहीं।
खरी प्रीत तव रही कबौं छोर्‌यो तेहि नाहीं॥
जासों उन्नति होइ सकत भारत की सांची।
कियो काज तुम सोई सदा बिबुधन सों जाँची॥
जा कारज को न्यायवती सरकार हमारी।
बिना कष्ट करि सकत ताहि तुम कह्यो बिचारी॥
नहिं बिरुद्ध सरकार के कबौं तुम कछु भाख्यो।
सदा ध्यान ताको महानपद को हिय राख्यो।
हाय! तुमारी टूट कहो कैसे कै पूजै।
बार बार धुनि यही आज चहुँ दिसि मैं गूंजै॥
हित के बदले मैं जिन सों नित होत बुराई।
देसहितैषी अजों परत ऐसे दरसाई॥
पै प्यारे तुमरो दुख कैसे इन ते जावै।
सीतलता तजि चन्द राहु सों कोउ किमि पावै॥
या भारत मैं अहैं लोग ऐसे बहु नांहीं।
जो चीन्हहिं ताके साँचे हितकारिन कांहीं॥
नतरु आज तव प्रान बियोग भये सब ओरा।

उठत भयंकर हाय हाय को आरत सोरा ॥
रखनकाज चिरकाल जगत में नाम तिहारो।
करते लोग उपाय खोजते बिबिध सहारो ॥
पै ए दिन हैं अजौं दूर या भारत कांहीं।
लहि ऐसी सरकार बढ़त नातो क्यों नांहीं ॥
प्रातकाल नभ कर पसारि तमरासि नसाई।
छन छन अपनो ओप पुंज चहुंदिस बगराई ॥
तेजोमय करि जगत देत जो रबि दिन पाये।
ह्वै मलीन छपिजात सोई रजनी मुख आये ॥
रतन सरिस चमकहिं अनन्त नभ में जो तारे।
रातकाल लखि जिनै लहैं सुख अँखियन तारे ॥
तिनहीं की गति भोर भये ऐसी ह्वै जावै।
सोक होत हिय लखे नयन अँसुआ भरि आवै ॥
सातदीप नव खंड मांहिं जिन को जस ब्याप्यो।
थर थर जिन को सुनत नाम अरि को दल काँप्यो ॥
जिन को तेज निहारि गये सूरजहुं सकाई।
तिनकी आज कथाहुँ नांहिं कहुँ परत सुनाई ॥
बालमीकमुनि ब्यासदेव आदिक रिखिराई।
जिन की कलकीरति दिगन्त अजहूं है छाई ॥
जिन को गुनि उपकार गरो अजहूं भरि आवै।
तिन की आज समाधिहुं नहि कतहूं दरसावै ॥
जग की ऐसिहिं रीति सदा सों है चलिआई।
आज जाहि हम लखत सो न कल परत दिखाई ॥

परि अनन्त या काल स्रोत सबहीं नसि जावै ।
धन बिद्या बल रूप आदि कछु काम न आवै ॥
याते तुमरे काज अन्त हमहूं को प्यारे ।
करन परत संतोख नैन अँसुअन को धारे ॥
पै जब लौं हिन्दीप्रचार भारत मों रैहै ।
सरस बेलि भाखा की जब लौं नहिं कुम्हलैहै ॥
जब लौं गैहैं लोग नागरी की गुनगाथा ।
देवाच्छर की ओर झुकैहैं जब लौं माथा ॥
जब लौं हिन्दी रारमलेख को आदर ह्वैहै ।
कल कबिता भाखा की जब लौं जग जस छैहै ॥
जब लौं रहिहै एक जनहुँ हिन्दीहितकारी ।
लगिहै जब लौं एक जीव को हिन्दी प्यारी ॥
तब लौं आदरसहित नाम तुमरो सब लैहैं ।
हिन्दीहितकारिन में तुम को आसन दैहैं ॥
याते अब हम कहन चहत औरहुँ कछु नाहीं ।
केवल बिनवत प्रेम सहित इतनो तुम पाहीं ॥
या अभागिनी हिन्दी की उतहूं सुधि करियो ।
समय पाइ कै याके दूखन को तुम हरियो ।
वैसहिं रहिहौ याहि काज निज समय बितावत ॥
कबौं भूलिहौ नांहि तुमैं हम सपथ दिवावत ॥
सांति देय प्रभु तुमैं आतमा तव सुख पावै ।
भारतमाता तुमहिं सरिस कोउ सुत उपजावै ।
यही प्रार्थना अहै जगतपति पाँहिं हमारी ।
सांति सांति पुनि सांति सब्द त्रै बार उचारी ॥

शोकोच्छ्वास।

बाबू हरिश्चन्द्र की मृत्युसम्बन्धिनी कविता।

दोहा।

सोकसिंधु पसरयो प्रगट, आज धरातल घेरि।
कालराहु कवलित कियो, भारतेन्दु को टेरि ॥१॥
सुनतहुते जग आज लौं, राहुग्रसत ससिपूर।
अनपूरो हरिचंद किमि, ग्रस्यो काल अगु क्रूर ॥२॥
लहि समोद जा सोम सों, सुजस ब्रजेस मयूख।
भारतगुनी चकोर गन, चह्यो न ऊख पियूख ॥३॥
बिकसत हे जाको निरखि, कबिगन कुमुद समूह।
राका लौं जासों लसी, भाखा कबिता जूह ॥४॥
जाइ दुरयो अब सो किते, नहिं जनात है हाय।
अरे निरदई काल कछु, तोसों नांहि बसाय ॥५॥
अस्त होत पूरो ससी, या ते मिलत बहोर।
कैसो यह अजगुत भयो, मिलन आस को तोर ॥६॥
ऐसो तोहि न उचित थी, अरे काल मतिमंद।
क्यों अकालही हरिलियो, भारतेन्दु हरिचंद ॥७॥
हाय हाय है मचिगयो, भारत मांहि अजान।
कहा लाभ यासों भयो, लह्यो कलंक निदान ॥८॥
मेरी अभिलाखा लता, दई समूल उखार।
अरे काल में नहिं कियो, कबहूं तव अपकार ॥९॥

मैं न कबहुं नैनन लख्यो, भारतेन्दु गुनऐन ।
कृष्णकथा तिन की रची, पै पल भूलत हैन ॥१०॥
नित नव सो रस पियन की, हुती हिये मैं आस ।
तेहि बिनासि कै तू अधम, पायो कौन सुपास ॥११॥
हे जनरञ्जक मुक्तिप्रद, भव भय हरन मुरारि ।
हरिहर विधि बन्दित सदा, स्वमित करन उरगारि ॥१२॥
जो चाह्यो सो करि लियो, प्रेरि काल सकलंक ।
ना तो का करि सकत थो, काल बापुरो रंक ॥१३॥
अब अस बिनवत दीन ह्वै, हरीऔध सुनु नाथ ।
भारतेन्दु हरिचंद को, कीजे परम सनाथ ॥१४॥
हे भारतबासी महा, कीनो काल कुचाल ।
आज नसी आसा किती, जानत श्री नँदलाल ॥१५॥
सम्बत ससि जुग गो अवनि, माघ कृष्ण कुज बार ।
षष्ठी तिथि निसि में तज्यो, भारतेन्दु संसार ॥१६॥

कबित्त ।

ऐसो है कठोर कौन आज भूमि भारत मैं जाके काज दुख को कुबीज नाहिं ब्वै गयो । दै कै यह कठिन कलेस अरे क्रूर काल कछु तेरो हियरो निहाल कैसे ह्वै गयो ॥ हरिऔध कहै कैसे एरे कपटी निकाम कृष्णरत प्यारो हरिचन्द तोसो ज्वै गयो । मूरख निलाज कहा लाज हूं न आई तोहि भारत के भाग को सुहाग आज ख्वै गयो ॥१॥१७॥

एकै रह्यो सदा जो सप्रेम राधिकेस ध्यायो कीनों त्यों सनेस काज केते गुनिवर को। हरिऔध कहै क्रूर भारत-निवासिन को दीनी बार बार बीर वारी बुद्धिवर को॥ भाव भरे भारतेन्दु बाबू हरिचन्दहूं को पल ना बिसार्‌यो तोते खल है अपर को। कपटी कपूत क्रूर लम्पट कराल काल करत लखात तू अकालही कहर को॥ २॥ १८॥

दोहा।

हौं चाहत जब लौं गगन, भ्रमत रहैं हरि चन्द।
भुव तबलौं भूलै नहीं, भारतेन्दु हरिचन्द॥१९॥

स्वर्गारोहण।

षट्पद।

किस लिये आज मेरा जी है घबराया।
आंसू आँखों में क्योंकर है भरआया॥
सब का मन है किस लिये आज मुरझाया।
किस लिये अँधेरा सभी ओर है छाया॥
सब लोग किस लिये आज आह करते हैं।
रोते हैं वो ठंढी साँसें भरते हैं॥१॥
किस लिये दिसायें आज नहीं है वैसी।
यह धूप हो गई है धुँधली क्यों ऐसी॥
वह चमक रही क्यों नहीं चाहिये जैसी।
सूरज की गत होगई आज है कैसी॥
क्यों बार बार इतना वह थर्राता है।
किस लिये वैसही डूब नहीं जाता है॥२॥

यह चिड़ियां क्यों नहिं आज चहचहाती हैं।
किस लिये चुप हुई बैठी दिखलाती हैं॥
उड़ती भी हैं क्यों नहीं क्या जनाती हैं।
अपने खोतों की ओर क्यों न जाती हैं॥
जिस से इन की हो गई दसा है ऐसी।
इन के ऊपर है आज बीतती कैसी॥३॥
वह पेड़ों में रह गई न क्यों हरियाली।
पत्तियां हो गई हैं उन की क्यों काली॥
झुक गई आप ही क्यों है उन की डाली।
किस लिये बेलियों की भी रही न लाली॥
लुट गई आज क्यों इन की सारी संपत।
क्यों रही नहीं फल फूलों में वह रंगत॥४॥
किस लिये घिर रही है इतनी अँधियाली।
है रात आज की तो देखो उँजियाली॥
किस लिये चाँदनी रही नहीं मनवाली।
है किस ने काली छींट चांद में डाली॥
क्यों नहीं चमकते हैं वैसेही सारे।
इतने धुँधले हो गये आज क्यों तारे॥५॥
क्या कहें नहीं हम से कुछ भी कह जाता।
मुँह को है कहते हुये कलेजा आता॥
जिस का झंडा सब से ऊँचा फहराता।
भलमनसाहत में जिसे न कोई पाता॥
उठ गई आज विक्टोरिया वही मेरी।
है घिरी इसी से चारों ओर अँधेरी॥६॥

बालकविनोद।

भगवान की बड़ाई।

जो है हमें बनानेवाला। उस का है सब काम निराला॥
देखो आसमान के तारे। कितने हैं आंखों के प्यारे॥
कोई नीला कोई पीला। कोई उजला वो चमकीला॥
देखो सूरज को है कैसा। चाँदी का गोला हो जैसा॥
कैसा प्यारा चाँद बनाया। जिसने देखा वही लुभाया॥
ठंढी ठंढी हवा बहाई। जो पेड़ों में होकर आई॥
यह पानी जो पीने का है। कितना अच्छा वो मीठा है॥
कर देती है आग हमारा। काम पका देने का सारा॥
जो यह मिट्टी है दिखलाती। कितने कामों में है आती॥
रंग रंग के फूल खिलाये। जिन के ऊपर भौंर लुभाये॥
बड़ा अनूठा वो मनभाया। चिड़ियों को गाना सिखलाया॥
हरे भरे पत्ते वो डाली। पेड़ों को दी है हरियाली॥
तुम्हें इसी ने आँखें दी हैं। जिन पर पलकें लगी हुई हैं॥
कान दिये वो नाक बनाई। जीभ उसी से तुम ने पाई॥
हाथ पाँव वो बदन तुम्हारा। है उसकाही रचा सँवारा॥
लड़को तुम उस का गुन गाओ। उस को पूजो उसे मनाओ॥
इस से होगा भला तुम्हारा। पाओगे दुखसे छुटकारा॥

गिलहरी।

कहते जिसे गिलहरी हैं सब। सभी निराले उस के हैं ढब॥
पेड़ों से नीचे है आती। फिर पेड़ों पर है चढ़ जाती॥
कुतर कुतर फल को है खाती। बच्चों को है दूध पिलाती॥
उस की रंगत भूरी कारी। आँखों को लगती है प्यारी॥
होती है यह इतनी चंचल। कहीं नहीं इसको पड़ती कल॥
उछलकूद में है यह जैसी। दौड़धूप में भी है वैसी॥
बैठी इस धरती के ऊपर। दोनों हाथों में कुछ लेकर॥
जब वह जल्दी से है खाती। तब है कैसी भली दिखाती॥
चिकनाचिकना रोआं इस का। लुभा नहीं लेता जी किस का॥
मत तुम इस को ढेले मारो। जी में इतनी बात बिचारो॥
कहीं इसे जो लग जावेगा। तो इस का जी दुख पावेगा॥
अब तक सब ने है यह माना। जी का अच्छा नहीं दुखाना॥

बन्दर।

देखो लड़को बन्दर आया। एक मदारी उस को लाया॥
कुछ है उस का ढंग निराला। कानों में है उस के बाला॥
फटे पुराने रंग बिरंगे। कपड़े उस के हैं बेढंगे॥
मुँह डरावना आंखें छोटी। लम्बी दुम थोड़ी सी मोटी॥
भवें कभी वह है मटकाता। आँखों को है कभी नचाता॥
ऐसा कभी किलकिलाता है। जैसे अभी काट खाता है॥

दांतों को है कभी देखाता। कूदफांद है कभी मचाता॥
कभी घुड़कता है मुँह बाकर। सब लोगों को बहुत डराकर॥
कभी छड़ी लेकर है चलता। है वह योंही कभी मचलता॥
है सलाम को हाथ उठाता। पेट लेट कर है दिखलाता॥
ठुमुक ठुमुक है कभी नाचता। कभी कभी है टके मांगता॥
सिखलाता है उसे मदारी। जो जो बातें बारी बारी॥
वह सब बातें वह करता है। सदा उसी का दम भरता है॥
देखो बन्दर सिखलाने से। कहने सुनने समझाने से॥
बातें बहुत सीख जाता है। कई काम कर दिखलाता है॥
फिर लड़को तुम मन देने पर। भला क्या नहीं सकतेहो कर॥
बनो आदमी तुम पढ़ लिखकर। नहीं एक तुम भी हो बन्दर॥

बहन।

देखो लड़को बहन तुम्हारी। कैसी है भोली वो प्यारी॥
उस के हाथ पांव वह छोटे। पतले पतले थोड़े मोटे॥
लाल लाल वो गोरे गोरे। जैसे किसी रंग के बोरे॥
कितने आंखों को हैं भाते। कैसे हैं अच्छे दिखलाते॥
उस का धीरे धीरे चलना। कभी खेलना कभी मचलना॥
दो दो दांतों को दिखलाकर। उसका हँसना कुछ मुँसकाकर॥
तुतली बातें प्यारी प्यारी। उस का कहना बारी बारी॥
भला नहीं किस को ठगता है। किसे नहीं प्यारा लगता है॥
उसे खेलौना जब देते हो। या जब उसे गोद लेते हो॥

तब वह कैसा खिल जाती है। कैसी प्यारी दिखलाती है॥
तुम उस को मत कभी रुलाओ। मत छेड़ो मत उसे डराओ॥
जो है इतनी भोली भाली। थोड़े में खुश होनेवाली॥
बुरी बात है उसे रुलाना। उसे छेड़ना और खिजाना॥
बातों से उस को बहलाओ। प्यार दिखाकर हँसो हँसाओ॥
अच्छे लड़के तभी बनोगे। वो सब के प्यारे तुम होगे॥

कोयल।

काली काली कूकू करती। जो है डाली डाली फिरती॥
कुछ अपनी ही धुन में ऐंठी। छिपी हरे पत्तों में बैठी॥
जो पंचम सुर में है गाती। वह ही है कोयल कहलाती॥
जब जाड़ा कम हो जाता है। सूरज थोड़ा गरमाता है॥
तब होता है समा निराला। जी को बहुत लुभानेवाला॥
हरे पेड़ सब हो जाते हैं। नये नये पत्ते पाते हैं॥
कितनेही फल वो फलियां से। नई नई कोंपल कलियों से॥
वह कुछ ऐसे लद जाते हैं। जो बहुत भले दिखलाते हैं॥
रंग रंग के प्यारे प्यारे। फूल फूल जाते हैं सारे॥
बसी हवा बहने लगती है। दिसा सब महँकने लगती है॥
तब यह होती है मतवाली। कूक कूक कर डाली डाली॥
अजब समां दिखला देती है। सब का मन अपना लेती है॥
लड़को जब अपना मुँह खोलो। तुम भी मीठी बोली बोलो॥
इस से कितने सुख पाओगे। सब के प्यारे बन जाओगे॥

प्रशंसावली

अर्थात्

नाना सत्पुरुषों की प्रशंसाविषयिणी कविता।

कवित्त।

चंचरीक चतुर चहत जाको चारु गंध नभग नरन को सो सरन मुनित्त है। पूरी होत कामुक की कामना अतुल जासों कलित कथनजाको ललित कबित्त है॥ गहत गुनीन मन कहत अलाप कल या गुन बिलोकि कै रहत चकिचित्त है। कंज है कि कुज है कि कोष है कि कोकिल है कर है कि कबि है कि काशिकेश कित्त है॥ १॥

दुखिन की दीनता औ दुख के दरन काज पूरन के हेत मनोकाम दीन उर को। हरिऔध गो द्विज समूह सन-मानन में राखन में सारो सौज साज निजपुर को॥ साधु संत सेवन औ आदर करन माँहिं चरन गहन मांहिं गौरव सों गुर को। बदि बदि बैरिन की बरता बिगारन में बिदित बिरद बीर बिजे बहादुर को॥ २॥

छप्पै।

जब लौं ब्योम दिनेस और ससि की गति होवै।
जब लौं अहिपति सेस सेजमुरको रिपु सोवै॥
जब लौं महिमंडल में गिरि तरु कानन सोहैं।

जब लौं जुवतीजन कटाच्छ सों पुरुखन मोहैं ॥
जब लौं समुद्र मरजाद तजि जग को नहिं प्लावन करै। -
तब लौं हरिऔध बिबुध हियो बिमल रावरो जस हरै॥३॥

कवित्त।

बिबुध बिहंग बृन्द बिटप बिसालतूही मेधावीन मंडली-मराल मानसर है। भावुकता भामिनी के भाल को तिलक भव्य तूही भूरि भावन सरोज भानुकर है॥ हरिऔध भाखै तूही एहो काँकरौली भूप कामुक कवीन को कलित कल्प-तर है। सविता कुदिन की करालता ते कुम्हिलाई कविता लता को एक तूही वारिधर है॥४॥

बीथिन मैं बार बार बगर बजारन मैं बिबिध बिनोद की बिसालताहू बगरी। पूरित प्रमोदपुंज पुलकि पसीजि चले केते कबि कोबिद प्रवीन पाइ पगरी॥ हरिऔध काशी कविसभा की बिलोकि धूम सफल भई है सेवा सारदा की सगरी। धाई धाई इन्दिरा लुगाई सी फिरत आज बाजत बधाई चन्दसेखर की नगरी॥ ५॥

दोहा।

उदय भानु सम जग बिदित, सूरज भानु उदार।
द्रवहु दीन पै दया करि, भूलि न करहु अबार॥१॥
पद्ब आदि सों अंत लौं, तजब न एहि सुखकन्द।
दुखी निरखि द्विज दीन को, दीजे आज अनन्द॥२॥
आस रावरी जिय अधिक, दूजे की अस नांहिं।

तुव आछत कुछ नहिं भयो, तो जै हैं केहि पांहिं ॥३॥
पांच बरस बीते दुखी, का पै कहँहुँ पुकार।
तुमरे चलत न अब चहत, अस दीनता हमार ॥४॥
चलत चलत पग थकि गये, तकत आस जुग नैन।
करत खुसामद दिन गये, थके याहि ते बैन ॥५॥
कहँ लौं मैं निज दुख कहँ हुँ, सुनि दुख पैहो भूरि।
अब अस कीजे जाहि ते, होय आस हिय पूरि ॥६॥
तीव्र ताप रबि अधिप तपि, तकि तव सीतल ठौर।
आइ पर्‌यो क्योंहूं सु चलि, नहिं निदरहु अब और ॥७॥
मैं नहिं बहु भाखन चहत, बिस्तर भय सुख दैन।
जान लेब इतनेहिं मैं, सकल बात गुन ऐन ॥८॥
तुम दयालु मैं दीन हौं, तुम आरज मैं बिप्र।
सब बिधि है बानक बन्यो, रखत आसु हूं छिप्र ॥९॥
करि पूरन तेहि देहु तुम, या गरीब को मान।
याके बदले करैगो, तुमरो हित भगवान ॥१०॥

कबित्त।

दै कै आस कीजे ना निरास सुखदानी आज जासों जौन भाखै तासों फेर भजनो कहा। कीजे दीन द्विज केरो काज जग जस लीजे "सूर्य्यभानु,, बिगत प्रकाम छजनो कहा॥ हरिऔध रावरो प्रताप याते दूनो होवे कारज है थोर याके हेत सजनो कहा। "यातो काहू रंग मैं न रँगिये सुजान प्यारे रँगे तो रँगेई रहै फेर तजनो कहा" ॥११॥

सांच हौं बखानों या मैं संकहूं कछू ना अहै आपहूं

बिचारैं आप तजे कौन जोवैगो। आप हैं कृपालु आप सूर्य्यभानु नाम राखैं आप को प्रकास तो तिमिर सब खोवैगो॥ हरिऔध आप को भरोसो दृढ़ राखै याते लिपि जो लिलार वाको खूब आज धोवैगो। औरन के तजे आस आप की घनेरी राखी आपहूं तजैंगे तो निबाह कैसे होवैगो ॥१२॥

दोहा।

बलि सुत को पति तासु सुत, तेहि बैरी को तात ।
सो तुमरी रच्छा समुद, करत रहैं दिन रात ॥१३॥

रोलाछन्द।

एहो द्विजकुल कमल बाल रबि बहु गुनवारे।
एहो द्विजता कल कवीक समिजन रखवारे॥
विद्यानारि सिंगार कला युवती तन भूखन ।
एहो अरिकुल अंधकार हित खर तर पूखन ॥
सुनीतिज्ञ बर बिज्ञ अभिज्ञ सकल ग्रंथनमत ।
तज्ञ परम कालज्ञ गुणज्ञ कृतज्ञ अनवनत ॥
कलित कर्म्म के कोष कुसल करतब्य कृपाकर।
कोबिद करुनासिन्धु काब्यपटु कौतुक आकर॥
रमासरिस रमनीय जन सुखद संकर के सम।
एहो श्रीयुत श्रीलरमाशंकर बुध सत्तम॥
कीट सेसकी गाथ लवा खगपति गति भाखै।
है अजगुत की बात पै सबै निज रुचि राखै।
प्रभा कीट नहिं पहुँचि सकत क्यों हूं रबिआगे।
पहुँचि गये पै चमकि गये तेहि दोख न लागे।

प्रभु के बर मरजाद सौंह कछु भाखन केरी।
दोऊ भुजा उठाइ कहत हैं सकति न मेरी।
पै जो राखि हिय दया नाथ मों को अपनायो॥
ताही को बलपाय जन कहत निज मन भायो।
निज मन की परतीत काज जग दिनमनि कांहीं॥
दीप दिखाइ प्रबोध करत बिचलत हिय नांहीं।
बहुत रंग मालिनी गंग को बारि चढ़ावत॥
अर्थ धर्म के धाम बिश्नु को भोग लगावत।
बिबुध न दूखत तिनैं लहत तिनहूं मनभायो॥
याही ते कहि कछू हम चहत प्रभु बिलमायो।
हम इक लघु द्विज हुते जीविका ही जेहि थोरी॥
अनाधार अवलम्ब रहित गति ही जग मोरी।
कोउ न सहायक हुतो न कोउ हित चाहनवारो॥
रह्यो अति कठिन राजद्वार में गमन हमारो॥
बहुत बार करि ब्योंत न हम इच्छितफल पायो।
सदा अनासा रही साथ मुख सुख न दिखायो।
पै प्रभु कृपा सुजोति जगे थोरे दिन मांहीं॥
नसी निरासा निबिड़कालिमा तजि हठकांहीं।
जिमि दिनेस की जोति पाइ चमकहिं नभतारे॥
जिमि आतप के परे छुद्र रजकन दुति धारे॥
लोहा पारस परसि होय जिमि सुबरन पावन।
चन्दन तरु की लगे वायु तरु होत सुहावन॥
तिमि प्रभु को पद परसि भाग लघुजन को जाग्यो।

चिर संचित दुख दोख छोरि हम को जनु भाग्यो ॥
या सताब्दी मांहिं अहै द्विजगन गति जैसी।
हम जानत जग मांहि आन गति अहै न तैसी।
सेवा करत लजात भीख मांगे नहिं पावत ॥
खेती में स्रम होत बनिज को ढंग न आवत।
पूज्य बनन की चाह पै न कछु बरता राखत ॥
मान चहत मनमांहि पै सदा सब सों माखत।
अहै कौन सो समय कहा करनो कब चाहै ॥
इन को याको ढंग भूलि दीनों बिधिना है।
कछु लिखि पढ़ि जहँ जात तहां कछु ऐसी ठानत ॥
जाते देखतही अरुचि सबै निज मन आनत।
ऐसे असमय समै जो ढरे प्रभु जन ऊपर ॥
जन ताको प्रतिकार करि सकत नहिं या भूपर।
पै प्रभु को अनमोल समय अब चहत न खोअन ॥
पृथक चहत प्रभु सुजस केरि मनिका हम पोअन।
याते इतनो चाहि जन करत बिनय समापन ॥
होत न अधिक हियाव लग्यो हमरो हिय कांपन।
जब लौं नभ में देखि परैं बुधि बल नव तारे।
जब लौं रबि के आस पास फिरि भूमि न-हारे ॥
जब लौं जलनिधि उदर भेदि नवदीप दिखाहीं।
आकरखन बल नभ जौलौं उडुगन ठहराहीं ॥
जब लौं मनु को बंस जगत में जस बिस्तारै।
जब लौं जल को करखि मूल सों तरुतन धारै ॥

तौ लौं सौरभ सरिस फैलि प्रभु सुजस सुहावन ।
सज्जनगन मन भौंर काज सीखै बिलमावन ॥

दोहा ।

बहत बायु मलयज परसि, दिसि सुगंध सरसाय ।
चन्दन पादप होयगो, आज तरुन समुदाय ॥१॥
जानि बसंतागम परत, हिय सरसावत चैन ।
हरित सुबिकसित देखिअत, आज तरुन मुद ऐन ॥२॥
सरस सरद को आगमन, है प्रिय आज लखात ।
सारस हंस चकोर कुल, जाते अति उमगात ॥३॥
जन रंजन बरखागमन, मन निरधारत मोर ।
जाते दादुरगन रटत, और नटत बनमोर ॥४॥
सुभागमन श्री हैट को, अहै ओपमय सूर ।
हीरक लौं चमकत जगत, जाते रजकन कूर ॥५॥

छन्द ।

किधौं सूर लै चन्द को साथ आयो ।
महा ओप को पुंज है आज छायो ॥
किधौं मंत्रि के साथ पाकारि सोहै ।
धरा आज जाते बड़ो चित्त मोहै ॥
किधौं काम लै कै बसंततु राजै ।
खिले पुष्प औ भृंग को बाघ बाजै ॥
किधौं शुक्र लै चन्द को तात भासै ।
महाज्ञान औ बुद्धि बानीं बिकासै ॥
किधौं ब्यास के साथ श्रीसूत दीसै ।

बड़े विद्यमानीन को मान मीसै ॥
किधौं हैट ज्ञानी रमा संभु साकं ।
बिराजै कहै ज्ञानदं गूढ़ बाकं ॥१॥

दोहा ।

विद्या प्राची दिसा के, स्वागत प्रखर दिनेस ।
नसत अविद्या जामिनी, भये जासु लवलेस ॥१॥
लहत मोद सरसिज सुघर, बालक को समुदाय ॥
जिन के सुगुन सुगंध ते, पाठक हिय हुलसाय ॥२॥
सारस सरिस अनंद अति, पावत पाठक लोग ।
पै वे सुमति सुनिसा मैं, लहत जु कुमति वियोग ॥३॥
दुरे उलूक समान वे, पाठक आजु लखात ।
जो आलस जड़ता निसा, सुख पावत सरसात ॥४॥
उडुगन लौं खलगन सकल, दुरे देखिअत आज ।
तम असमझ मैं लहत हैं, जिन को मोद समाज ॥५॥
कुमति कवीक भई हिये, अति लज्जित अकुलाय ।
उदय भये अज्ञान ससि, जेहि अनन्द अधिकाय ॥६॥
अब प्रभु ते बिनती करत, जन दोऊ कर जोर ।
हाथ आयहै नहिं कबौं, ऐसो समै बहोर ॥ ७ ॥
मिडिल पास बालकन को, जिमि पकरयो प्रभु हाथ ।
राज काज मैं थान दै, तिन को कियो सनाथ ॥८॥
जिमि उठाय ग्रंथन बुरे, कियो सुग्रंथ प्रचार ।
अरु भारत बासीन को, दियो चैन करि प्यार ॥९॥
जिमि बिभाग विद्या करी, उन्नति प्रभु दै ध्यान ।

औ ताके दुख को हरयो, दरि औरन को मान ॥१०॥
जिमि प्रचारि विद्या नई, जड़ता दई निकार।
या बिधि ते कितनो कियो, भारत को उपकार ॥११॥
तिमि करि दया दयानिधे, सुनहु दीन को बैन।
पकरि नागरी बांह को, कीजै ताहि सचैन ॥१२॥
राजकाज में थान दै, पुजवहु मन की आस।
त्यों जस दुंदुभि को सबद, बगरावहु चहुं पास ॥१३॥

छन्द।

भयो आज यह नगर आगमन प्रभु ते ऐसो।
कछु बखानि करि सकत पै न जस चाहत वैसो ॥
धरा यहां की लसत मंजु मन मोहत सब के।
लगत रम्य आराम मलीन रहे जो कब के ॥
बहत पवन सनिगंध मंद सीतल सुखदायक ॥
बिकसे कुसुम अनन्त मोद के परम सहायक।
करत कुतूहल बालबृन्द पाठकहिय हुलसत।
नगर नारि नर मुदित खेद को नेक न परसत ॥
डगर बगर अति धूम हाट औ बाट मनोहर।
खिजत स्वर्ग मन मांहिं होय लज्जित अपने उर ॥
कल्प कुसुम ते सरस यहां को सुमन बिराजत।
कल्प बृच्छ को निदरि मनोहर तरुगन राजत ॥
एडमन्ड ह्वाइट इसक्वायर सी 'यस लखियत।
आज नाथ आगमन सकल कौतुक जो कहियत ॥

दोहा।

स्वागत मूढ़ कुधातु के, पारस परम अनूप।
स्वागत सुगुन सुखेत के, नव परजन्य सरूप ॥ १ ॥
स्वागत कला कलापिनी, हित घननाद समान।
स्वागत जड़ता तिमिर के, दिनकरओप निधान ॥२॥
स्वागत खलता कृषी के, जग हिम उपल समूह।
स्वागत विद्या मही के, नव पादप को जूह ॥३॥
स्वागत गुनी सरोज के, सुखदायक परभात।
स्वागत कुमुद सुजान के, हिमकर सीतल गात ॥४॥
स्वागत विद्रुष मराल के, मानसरोवर कूल।
स्वागत श्रीयुत लच्छमी, संभु सकल सुखमूल ॥५॥

दोहा।

अहै सुसोभित या नगर, सो अपार गुनधाम।
कहत सुनत हरखत हियो, जाको सुजस ललाम ॥१॥
देवराज लौं तेज जेहि, लखि सुख पावत लोग।
धन्वंतर लौं जासु जस, सकल दरत दुखसोग ॥२॥
सुरगुर लौं जाकी कला, विद्या भनत कविन्द।
जेहि उदारता मेघ सम, भाखत सबै अनिन्द ॥ ३ ॥
धरासरिस जा मैं छमा, प्रगट देखिअत नैन।
अमी पियूखहुँ ते सरस, जाके मुख को बैन ॥ ४ ॥
भई जासु अधिकार मैं, विद्योन्नति सब ठौर।
कुमति अज्ञता हीनता, बनी काल को कौर ॥ ५ ॥
जिती असत पुस्तक रहीं, तिन को भो अपकार।

सरस सुखद सदग्रंथ को, दिन दिन होत प्रचार ॥ ६ ॥
निज पद जे न लहत हुते, लिखि पढ़ि कै ते आज ।
पाइ आपने पदन को, सारत अँपने काज ॥ ७ ॥
दीन हीनहूं सुख लहत, दुखियन पावत चैन ।
पाइ आपने थान को, कहत साँच ए बैन ॥ ८ ॥
याते बिनवत ईस ते, कर संपुट को जोर ।
सेस सीस जौलौं धरा, गंग बहै निधि ओर ॥ ९ ॥
रबि ससि उडुगन ते रहैं, जब लौं राजत व्योम ।
तौलौं ताको जस बढ़ै, कबौं न होय बिलोम ॥ १० ॥

छप्पै ।

जब लौं जग में नीति नृपन के हिये बिराजै ।
जब लौं उडुगन सहित गगनरजनीपति राजै ॥
जब लौं भू में अति पुनीत गंगाजल सोहै ।
जब लौं बुधजन हियो कबिन की कविता मोहै ॥
एहो श्रीयुत श्री लछमीशंकर तब लौं हम चहत ।
फैले प्रफुलित गुनिमन करत बसुधा तव कीरति महत १॥

दोहा ।

एहो गुनिजन प्रान धन, द्विजकुल के सिरमौर ।
बिज्ञ रसिक पंडित गुबी, सकल सुमति के ठौर ॥१॥
ज्ञानवान बिद्वान वर, महिमायुत मतिमान ॥
कृपासिंधु करुनायतन, रहित क्रोध अभिमान ॥२॥
श्रीयुत श्रीश्री लच्छमी, संभु सकलगुन ऐन ।

अरिसमूह संताप कर, मीतन के सुख दैन ॥३॥
जिन मारयो लंकेस को, हिय मैं बान प्रहारि।
बीच सभा मैं जिन दियो, कंस केस गहि डारि ॥४॥
हम चाहत हिय मैं सदा, अति प्रमोद उपजाय।
यह तुमरी रच्छा करैं, ह्वै सब ठौर सहाय ॥५॥

छन्द।

स्वागत सब गुन ऐन रसिक बर विद्यासागर।
स्वागत नीति निधान विज्ञबर मानदनागर॥
हम थोरी मति रखत अहैं प्रभु बहु गुनवारे।
फिर कैसे कहि सकत रावरे हम गुन सारे॥
पै लखि कै छबि आज रावरी हिय सुख पावत।
याही ते कछु कहन काज हम चाव बढ़ावत॥
एहो श्रीयुत राय बहादुर लछिमी संकर।
पटसालन के इन्सपेक्टर एम ए पदधर॥
निज डिप्टी श्रीमान मोलवी अकबर खां को।
साथ लिये जिमि फबत हम कहत वा उपमा को॥
किधों दैत्यगुरु साथ भानु को तात सुहावत!
किधों चन्द के संग भूमि को सुतछबि पावत॥
हम निश्चय करि सकत नांहिं याते सुख पाई।
केवल इतनो चहत मोद हिय मैं उपजाई॥
जब लौं वन गिरि नदी सहित यह पुहुमी राजै।
तबलौं प्रभु को सुजस बिबुध गन हिये बिराजै ॥१॥

दोहा ।

लछिमी जाके गृह बसत, छबि पावत सब भांति ।
कै लछिमी के सरिस जेहि, जग की रीत जनाति ॥१॥
शंकर, शं करतै रहत, जाको सहित उमाह ।
कै शंकर के सम अहै, जा मति केर प्रबाह ॥२॥
राय सरिस जाको अहै, सौज साज एहि काल ।
कै सिखरावति राय जेहि, नीतिहुँ कांहिं सुचाल ॥३॥
होत बहादुर क्रूर हूं, जाके बल को पाय ।
किधौं बहादुर लौं कबौं, जाको रोस जनाय ॥४॥
राय बहादुर बिबुध बर, लक्ष्मी शंकर सोय ।
चिरजीवौ जग मैं अटल, तव प्रताप नित होय ॥५॥

दोहा ।

सुखी होहु बुधजन उमहिं, मोद बढ़ाइ अपार ।
तिन को दरसन पाइहौ, तुमैं करत जो प्यार ॥१॥
कहा करत हो मौन गहि, अहो गुनीजन धीर ।
चलहु क्यों न तिन को लखन, जा हित रहे अधीर ॥२॥
सुनत न क्यों मेरी चले, कहा करन कबिराय ।
आयो है जासों मिलत, तुम अतिही सुखपाय ॥३॥
लरिकन तुम क्यों करत हो, अब बिलंब न जनाय ।
अपनी उन्नति के समय, कोऊ चूकि न जाय ॥४॥
को आयो को सोर सुनि, मैं अति पुलकित होय ।
केवल इतनोहीं कह्यो, राय बहादुर कोय ॥५॥

दोहा ।

अहो आज का होत है, कौतूहल एहि ग्राम ।

कहा जानि पहिरत अहैं, बालक बसन ललाम ॥१॥
क्यों प्रमोद अस होत है, जाते सहित हुलास।
सजे बजे बालक कढ़त, तजि आपनो अवास ॥२॥
है बिनोद क्यों अस बढ़ो, अहो मीत गुनऐन।
जाते भू सूधो परत, लरिकन को पद हैन ॥३॥
जानि परत मोको नहीं, कहा जानि कै आज।
सनमुख आवत है सजी, लरिकन केरि समाज ॥४॥
अहा जानि मैं अब गयो, भो भ्रम केर बिनास।
श्रीलक्ष्मीशंकर बिदुख, आये पूरन आस ॥५॥

ग़ज़ल।

आते हैं आज लक्ष्मीशंकर।
तेज में जो हैं दूसरे दिनकर ॥

हमने सोचा जो और तो समझा।
बुद्धि भी उन की है बहुत बढ़कर ॥

योंहीं यह भी बिचार में आया।
रूप क्या काम से है कुछ घटकर ॥

ठीक ही आपने कही यह बात।
हैं बृहस्पतिसमान वह बुधवर ॥

नीति भी जानते सभी हैं वह।
दैत्यगुरु के समान हैं पटुतर ॥

गुन भी उन का है नीरनिधि की भांति।
सब तरह से अथाह रतनाकर ॥

क्या दया का बखान मुझ से हो।
धर्म्म की आंख रहती है उनपर॥
अंत होता नहीं प्रशंसा का।
क्या करें जो न हम रहें चुपकर ॥१॥

क़िता।

क्यों फूल रहे हैं आज तरुगन ?
क्यों घूम रहे हैं भृंग बनबन ?
आते हैं हमारे इन्सपेक्टर।
होता है इसी से चित्त रंजन ॥१॥
क्यों बिनोद हम से आज मिलता है।
क्यों कलेजे का दूख छिलता है॥
लच्छमी संभु की अवाई है।
जी हमारा इसी से खिलता है ॥२॥
बहती है बायु मंद मंद गंध को लिये।
करते हैं गान भृंग पान पुष्परस किये॥
है आगमन कहो तो आज किस महानकी।
जिस से हमें किसी ने कई लाख देदिये ॥३॥

आर्य्यपंचक ।

लावनी ।

जैसा हमने खोया न कोई खोवेगा ।
ऐसा नहिं कोई कहीं गिरा होवेगा ॥
एक दिन थे हम भी बल विद्या बुधवाले ।
एक दिन थे हम भी धीर बीर गुनवाले ॥
एक दिन थे हम भी आन निभानेवाले ।
एक दिन थे हम भी ममता के मतवाले ॥
जैसा हम सोये क्या कोई सोवेगा ।
ऐसा नहिं कोई कहीं गिरा होवेगा ॥१॥
जब कभी मधुर हम सामगान करते थे ।
पत्थर को मोम बनाकर के धरते थे ।
मन पसू और पंखी तक का हरतेथे ॥
निरजीवन सों में भी लोहू भरते थे ।
अब हमें देख कर कौन नहीं रोवेगा ॥
ऐसा नहिं कोई कहीं गिरा होवेगा ॥२॥
जब कभी बिजय के लिये हम निकलते थे ।
सुन कर के रणहुंकार सब दहलते थे ॥
बल्लियों कलेजे बीर के उछलते थे ।
धरती कँपती थीं नभतारे टलते थे ॥
अपनी मरजादा कौन यों डबोवेगा ।
ऐसा नहिं कोई कहीं गिरा होवेगा ॥३॥
हम भी जहाज पर दूर दूर जाते थे ।

कितने दीपों का पता लगा लाते थे ॥
जो आज पासफ़िक ऊपर मँडलाते थे ।
तो कल अटलांटिक में हम दिखलाते थे ॥
अब इन बातों को कहो कौन ढोवेगा ।
ऐसा नहिं कोई कहीं गिरा होवेगा ॥४॥
तिल तिल धरती था हम ने देखा भाला ।
अमरीका में था हम ने डेरा डाला ॥
यूरप में भी था हम ने किया उँजाला ।
अफ़रीक़ा को था अपने ढँग में ढाला ॥
अब कोई अपना कान भी न टोवेगा ।
ऐसा नहिं कोई कहीं गिरा होवेगा ॥५॥
सभ्यता को जगत में हम ने फैलाया ।
जावा में हिन्दूपन का रंग जमाया ।
जापान चीन तिब्बत तातार मलाया ॥
सब ने हम से ही धरम का मरम पाया ।
हम सा घर में काँटा न कोई बोवेगा ॥
ऐसा नहिं कोई कहीं गिरा होवेगा ॥६॥
अब कलह फूट में हमें मज़ा आता है ।
अपनापन हम को काट काट खाता है ॥
पौरुख उद्यम उतसाह नहीं भाता है ।
आलस जम्हाइयों में सब दिन जाता है ॥
रोरो गालों को कौन यों भिगोवेगा ।
ऐसा नहिं कोई कहीं गिरा होवेगा ॥७॥

अब बात बात में जाति चली जाती है।
कँप कँपी समुन्दर लखे हमें आती है॥
हरिऔध समझते ही फटती छाती है।
अपनी उन्नति अब हमें नहीं भाती है॥
कोई सपूत कब यह धब्बा धोवेगा।
ऐसा नहिं कोई कहीं गिरा होवेगा॥८॥

लावनी।

आओ प्यारे बैठो तुम को समझावें।
हम श्राद्धकरम का मरम तुम्हें बतलावें॥
जो कभी किसी का हित कोई करता है।
तो सुजन सदा उस को जी में धरता है॥
मरजाने पर भी दम उस का भरता है।
उस के लड़केबालों पर भी ढरता है॥
नित भले जगत को भली नीति सिखलावें।
हम श्राद्धकरम का मरम तुम्हें बतलावें॥१॥
मुँह के ऊपर हैं बातें सभी बनाते।
जीतेजी तो हैं प्यार सभी जतलाते॥
पर जगत बीच हैं मरद वही कहलाते।
जो मरजाने पर भी हैं नेह निभाते॥
ऐसे ही जन जग में स्वर्गीय कहावें।
हम श्राद्धकरम का मरम तुम्हें बतलावें॥२॥
जो कहते हैं क्या मरे हुए को मानें।
वह निज गौरव की बात नहीं अनुमानें॥

मरजादा अपने बड़ों की न पहचानें ।
वह कुछ कृतज्ञता का बिभेद नहिं जानें ॥
वह गूढ़ बात में मन भी नहीं लगावें ।
हम श्राद्धकरम का मरम तुम्हें बतलावें ॥३॥
जो मरे हुये जगबीच मान नहिं पाते ।
तो क्यों समाधि मक़बरे अनेक लखाते ॥
क्यों सभा समाजों में उन का जस गाते ।
क्यों चन्दा करके यादगार बनवाते ॥
जगबीच मरे सब ठौर समादर पावें ।
हम श्राद्धकरम का मरम तुम्हें बतलावें ॥४॥
है कौन पिता माता समान उपकारी ।
है रोम रोम ऊपर उन का ऋन भारी ॥
मरतेही जो भूलें ऐसे हितकारी ।
तो हम सा है जगबीच कौन अपकारी ॥
है यही उचित जो हम उन को नित ध्यावें ।
हम श्राद्धकरम का मरम तुम्हें बतलावें ॥५॥
है हिन्दूजाति सदा उन का गुनगाती ।
मरतेही उन को भूल नहीं है जाती ॥
जिस दिन उन के मरने की तिथि है आती ।
उस की सनेह से भर आती है छाती ॥
वह उमग उमग कर नैनों नीर बहावें ।
हम श्राद्धकरम का मरम तुम्हें बतलावें ॥६॥
हिन्दू उस दिन हैं उन का परब मनाते ।

अपने पुरोहितों को हैं सविधि जिमाते ॥
कंगाल गरीबों में हैं अन्न बँटाते।
सादर हैं अपने भाईबंद खिलाते ॥
वह प्रेमबिवस तन की सुधि भी बिसरावें।
हम श्राद्धकरम का मरम तुम्हें बतलावें ॥७॥
जिस से इतना धन बिना नहीं बन आवे।
वह एक बरहमन अपने यहां जिमावें ॥
यों यादगार पित की हरसाल मनावे।
हिन्दू कृतज्ञता का गौरव दिखलावे ॥
ऐसे अवसर नर बड़े भाग से पावें।
हम श्राद्धकरम का मरम तुम्हें बतलावें ॥८॥
यह ऐसी अच्छी यादगार है जारी।
जिस को कर सकते हैं सारे नर नारी ॥
कालिज आदिक जो यादगार हैं भारी।
उन के दौलतवाले ही हैं अधिकारी ॥
इस रीति चलानेवाले को बल जावें।
हम श्राद्धकरम का मरम तुम्हें बतलावें ॥९॥
अब रहा नहीं धन जो उतसाह दिखावें।
पितरों को जल देकरही मन समझावें ॥
इक मूठी चावल का हम पिंड बनावें।
उस को अरपनकर जी की कसक मिटावें ॥
यों दुख में भी नहिं निज परतीत नसावें।
हम श्राद्धकरम का मरम तुम्हें बतलावें ॥१०॥

अपने अच्छे गुन वो सुनीति को खोकर ।
निज कुल मरजादा को सब भांति डुबोकर ॥
कौमीयत को भी वृथा लगाकर ठोकर ।
तुम कभी न उन्नत होगे आरज होकर ॥
हरिऔध प्यार से यह तुम को जतलावें ।
हम श्राद्धकरम का मरम तुम्हें बतलावें ॥११॥२॥

लावनी ।

हम लाख बात की एक बात कहते हैं ।
हिन्दू रहकर ही भारत के रहते हैं ॥
हैं मुसलमान जितने हम को दिखलाते ।
उन में हम हिन्दूबंस अधिक हैं पाते ॥
पर अब हिन्दूही उन्हें नहीं हैं भाते ।
भारत से उन के दूर हुये सब नाते ॥
कहते इन आँखों से आँसू बहते हैं ।
हिन्दू रहकर ही भारत के रहते हैं ॥१॥
दजला फुरात उन की प्यारी नदियां हैं ।
अब अरब रूमही को वह सदा सराहें ॥
मक्का को और मदीनाही को चाहें ।
वह सदा मुहम्मदसंग सनेह निबाहें ॥
कितनेही कलेजे इस दुख से दहते हैं ।
हिन्दू रहकरही भारत के रहते हैं ॥२॥
जितने हिन्दू ईसाई बने लखावें ।
वह ईसा को अपना औतार बतावें ॥

तीरथ करने को यरूशलम में जावें ।
वह जारडन के जल को पवित्र बतलावें ॥
वह चालढाल यूरपही का गहते हैं ।
हिन्दू रहकर ही भारत के रहते हैं ॥३॥
ब्रह्मो समाज आरज समाज मतवाले ।
कंहने ही को बनते हैं भारतवाले ॥
दुनिया भर से हैं इन के ढंग निराले ।
इन लोगों ने अपनेही घर हैं घाले ॥
यह निज मनमानी सदा किया चहते हैं ।
हिन्दू रह कर ही भारत के रहते हैं ॥४॥
हैं बड़ी जाति जितनी जग बीच लखाती ।
उन सब की हैं जातीय बस्तु दिखलाती ॥
पर इन को हैं जातीय बस्तु नहिं भाती ।
सुनकर के उन का नाम लाज है आती ॥
ये यूरप की बातों हीं पर ढहते हैं ।
हिन्दू रहकर ही भारत के रहते हैं ॥५॥
इन का जी श्रीगंगे सुनकर जलता है ।
काशी प्रयाग पर क्रोध सब निकलता है ॥
दसमी दीवाली को आसन टलता है ।
श्री राम कृष्ण गुनगान बहुत खलता है ॥
सुनकर पुरान को ये नहीं उमहते हैं ।
हिन्दू रहकर ही भारत के रहते हैं ॥६॥
ये नाहक बिखरस बीच घोल जाते हैं ।

ये मिलेहुओं को बरबस बिलगाते हैं ॥
ये कलह फूट जन जन में फैलाते हैं।
ये रही सही जातीयता नसाते हैं ॥
ये इन बातों में महामोद लहते हैं।
हिन्दू रहकर ही भारत के रहते हैं ॥७॥
अब भी जै श्रीगंगे की धुनि अतिप्यारी।
उमगा देती है बीस कोटि नर नारी ॥
देते सुनकर मन्दिर मूरत को गारी।
है बीस कोटि तनते कढ़ती चिनगारी ॥
जल भुन कर ये इन बातों को सहते हैं।
हिन्दू रहकर ही भारत के रहते हैं ॥८॥
ऐ भारत का मुख उज्जल करनेवालो।
सोचो समझो अपना घर देखो भालो ॥
घबराकर के पग इधर उधर मत डालो।
अपनी मरजादा को धीरज से पालो ॥
हरिऔध धरमबल से सभी निबहते हैं।
हिन्दू रहकर ही भारत के रहते हैं ॥६॥३॥

खेमटा।

हम साँची कहें मत मानो बुरा।
आरज का यह काम नहीं है जो वह राखे बगल में छुरा।
वह गाड़ी कब लीक गहेगी ठीक न होवे जिस का धुरा ॥
भेदभरी घर की बातन को कौन भला नहिं रखता दुरा ॥

तुरत भले नहिं कह देते हैं जो जब उन के जी में फुरा।
आरज ए हरिऔध वही है जो जन हित में जी से जुरा ॥४॥
हम कैसे तुमैं समझावैं कहो। रार मचावत हो उनहीं
सों तुम जिन को अपनाया चहो ॥ जिन के जी में घर
करना है तुम उनहीं से किनारे रहो। मानत हो सब थल
प्रभु बासी फिर क्यों मन्दिर देखे दहो ॥ पंडित जन गुन
को गहते हैं पर तुम औगुन ही को गहो। आरज तुम
हरिऔध तभी हो जो दुख काहू के जी को न हो ॥ ५ ॥

विनोदसतक।

ठुमरी।

बतियाँ न बनावो अति चपल स्याम। विनगुन हार
हिये पै राजत बलय पीठ बिकसित ललाम ॥ चंचल नयन
अरुन अलसोंहैं बिथुरी अलक जगे त्रिजाम। परत कहा
हरिऔध पगन पै मोंसों रह्यो अब कौन काम ॥१॥
पलहूं नहिं भूलत हाय दई। साँवलि सूरत माधुरि
मूरत नैन कमलसम चैन मई। मंद मंद पग धरन धरा पै
कटि किंकिनि धुनि जगत जई। हरिऔध वह विहँसन
बोलन वह सुकपोलन अलक छई ॥२॥
हमरी गति है है कौन हरी। पापहि मांहिं आयु सब
बीती गुन नहिं गायो एक घरी। करत कुचर्चा अति सुख
मानत परहित की नहिं बानि परी। जो तुमहूं प्रभु बिरद
भुलैहो तो कैसे हरिऔध तरी ॥३॥

चैता ।

बिगरल मोर करमवां नहिं जानो कौने करनवां । घर गांव छुटल दियार देस छूटल छुटि गैलें सिगरे सजनवां ॥ खोजलेहुँ कतहुँ न हित हम पावत सब सुख भैलें सपनवां । घाम नहिं गिनली बतास नहिं गिनली सुख सों न कैली सयनवां । मरि मरि कै निज काम सँवरली तबहुं भयल मनमनवां । बरस बरस की होरिहुँ के दिन दुख के भयल समनवां । तुम बिन को हरिऔध उबारै हे हरि बिपति हरनवां ॥४॥

सजनी सैयां नहिं आये बगिअन फुलल बेइलिया । अमवा बौरे भँवरवा भूले पिअर भइल कनइलिया ॥ चटकन लगी गुलाब की कलिया कुहकत फिरत कोइलिया । अजहुँ न पिय हरिऔध निठुर के मन की मिटल मइलिया ॥५॥

पिय परदेसवां में छाये कटत चहत की न रतिया । डारन कुहुकि कोइलिया बोलत चाँदनि भइल सवतिया ॥ चन्दहिं देखि करेजवा बिहरत बाढ़ल नई बिपतिया । छन छन अँखियन नाचन लागी पिय हरिऔध सुरतिया ॥६॥

खेमटा ।

साँवरे मोरी बहियां महोना । समुझि बूझि मुखबैन उचारो, कोऊ अनुचित बात कहोना ॥ बरबस रार करत कत मोंसों गैल रोकि तुम ठाढ़ रहोना । मानि कही हरिऔध हमारी हम सों दधि को दान चहोना ॥७॥

दादरा ।

कैसो है मोहन छैल छबीला । बिहँसन मंजु बयन अति प्यारे कैसो है दोऊ नैन रसीला ॥ घुघुरारी अलकैं सुकपोलन कैसो फबै दोउ अधर रँगीला। दमकत दारिम सी दसनावलि चारु चिबुक है कैसो नुकीला । मृदुल बिसाल सुहावन बाहैं कंध दोऊ है कैसो सजीला। लसत उदर हरि-औध मनोहर कटिपट पीत है कैसो फबीला ॥१॥

मानत ना मदमाते नयनवां । ललकत छबि अवलो-कन के हित छनक रहन नहिं देत अयनवां। पल पल बिकल भये से डोलत सपनसरिस भयो असन सयनवां । भरि भरि अँसुआ रोवन लागैं सुनि हरिऔध के हित के बय-नवां ॥२॥

कैसे बसत बिदेस सजनवां । कबहुँ न हिय हमरो दुख आनत काहें बनत सब जानि अजनवां । कलपि कलपि हम दिवस बितावत भावत हमहिं न पल धन जनवां । पिय हरिऔध गले लगि जाओ हम नहिं चाहत माल खजनवां ॥३॥

कबहुं कियो न हम उचित करमवां । करि करि पापन मन सुख मानत अपने कुल को तजत धरमवां ॥ जनअप-कारहिं मैं पन बीतत रखत न अँखियन केर सरमवां । तुम बिन को करुनानिधि प्यारे हिय हरिऔध को हरय भरमवां ॥४॥

तुमहिं करत हरि जनसनमनवां । तुमहिं मया करि

ॐ

" काव्योपवन "

का

शुद्धाशुद्ध पत्र ।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४	८	अकुपार	अकूपार
५	१३	उपद-मन	उपदमन
५	१४	उतुंग	उत्तुंग
७	२३	सजन-न	स-जतन
६	२	दिनहूं	दीनहूं
६	४	मनावे	मनावैं
६	१३	कि	की
११	१	हितू-न	हितून
१२	७	हरिऔध	हरीऔध
१३	४	सेवक-माँहीं	सेव-कमाँहीं
१४	२	ओखों	ओखो
१४	३	धोखों	धोखो
१४	१८	परवल	परबल
१५	२३	साधै	साधे
१६	१६	तुम	तू
१८	७	को	के
२०	१८	मति	मित
२३	५	घरे को	वरे को
२३	८	होयगो	होयगी
२३	२०	हरि औध	हरीऔध
२५	१५	करी	करीं
२७	२	पापनि	पापिन
२८	२२	सों	कों
२६	१०	को	की

३०	१८	दैवन	देवन
३३	१७	जो कहुँ	जों कहुँ
३४	१८	कौंढ़िहु	कौढ़िहुँ
३५	२०	बारि	वारी
३७	१४	तखब	तरपब
४१	१६	न्योत	ब्योंत
४२	६	हुकुम-न	हुकुमन
४२	१६	अरुभि जात	अरुभि जात
४४	१४	अकाम-ताते	अकामता-ते
४४	१४	सकाम-ताते	सकामता-ते
४४	२०	गागरी-न	गागरीन
४४	२१	कांकरी-न	कांकरीन
४६	१३	हँमें	हँमै
४६	१६	चुम्मन	चूमन
४८	५	बड़ो	बड़े
४८	६	हौं	हों
४८	१६	परि	परी
४६	१२	धारत	धारत
५०	१४	इकसै हथी	इक-सैहथी
५२	५	सौन	सोन
५२	१८	मानिहुं	मानहु
५३	१७	बसै	बसे
५३	२१	लेती	लेति
५४	४	सुहावन	सुहान
५४	१७	सँवागै	सँवागैं
५४	२४	छलांगै	छलाँग
५५	१७	ऐरे	एरे
५६	१६	डरिहौ	डरिहौ
५६	१६	निहागी	निहागी

५८	१३	के	की
५८	२१	कहै	कहे
५९	८	बिगरै	बिगरे
५९	१५	रहै	रहे
६०	२०	लुटी	लुठी
६१	१०	बात-नहीं	बातन-हीं
६४	२	अहो	अहो
६७	३	होना	होता
६८	५	जात	जाता
६८	१८	बारन	वारन
६९	७	सौहै	सौंहैं
७०	१	काटे	काँटे
७१	२१	फले	फूले
७२	११	बाकी	बाँकी
७२	१२	मंयक	मयंक
७६	१२	अव	आब
७५	१७	प्रचंड	प्रपंच
७६	८	और	औरै
७७	९	सों	सी
७७	१२	परसाने	परसानो
७८	९	सों	सो
७९	३	बरे-तिनते	बरेतिन-ते
८१	३	जोऊ-बितात-न	जो-ऊबि-तातन
८४	९	तोयन	तोमन
८४	१७	सदार-है	सदा-रहै
८५	४	घरि	धेगि
८५	९	है	हैं,
८५	१५	बरुथ	बरूथ
८६	९	अजोरी	अजोंगी

८६	८	कालिन्दी	कालिंदी
९०	४	अहै	अहैं
९०	२१	मयूखहूं	पियूखहूं
९०	२२	ना	न
९४	१४	नित	नित्त
९५	६	भी	कभी
९६	४	है	हैं
९६	१८	को	की
९६	२१	को	की
९६	२२	सान-व	मानव
९९	२१	उलझने	उलझनें
९९	२१	पड़ती है	पड़ती हैं
९९	२३	विरोधो	विरोधी
१००	६	बाजागरी	बाजीगरी
१००	१६	हुवे	हुए
१०१	२०	नवनागर	नयनागर
१०२	२	है	हैं
१०४	१४	दायिमी	दायिनि
१०४	१५	बिधायिनी	बिधायिनि
१०४	२१	निकन्दानि	निकान्दिनि
११०	११	पलक-न	पलकन
१११	१३	कामिनी	कामिनि
१११	१८	ए-कत	एकत
११२	८	लालक-नीलपटी	लाल-कनी-लपटी
११३	८	खालन	खाल-न
११४	६	बेपानिय	बेपानिप
११५	४	है न	हैं न
११६	१६	जरै	जरे
११७	३	गहैन	गहैंन

११८	३	तज	तेज
११८	४	ऐ	ए
११८	४	सकै	सकैं
१२१	१०	दरसाय	दरसाए
१२५	१३	अमल-ताहि	अमलता-हि
१२७	१४	बारनवारे	बारनवारे
१३२	४	पोछनवारो	पोंछनवारो
१३३	२	जो	जे
१३६	१४	ताको	ताके
१३७	२१	नहि	नहिं
१३९	१६	थी	थो
१४१	१७	है	हैं
१४३	३	हम	हमें
१४५	१४	वह	यह
१४७	६	मुनित्त	सुनित्त
१४७	१९	सौवै	सोवै
१४९	२१	थोर	थोरो
१५१	३	राखि	रखि
१५१	७	बहुत-रंग	बहु-तरंग
१५१	१५	ज्योत	ज्योंत
१५३	२	काज	काहिं
१५३	२०	बाघ	बाघ्र
१५६	१६	लौ	लौं
१६२	१४	निरजीवन-सों	निरजीव-नसों
१६६	७	जिमांवे	जिमावे
१७०	१७	हरिऔध	हरीऔध
१७१	२	जानो	जानों
१७१	१३	चहत	चाहत